हिन्दी कहानियाँ

हिन्दी कहानियाँ

संपादक

डॉ० श्रीकृष्णलाल

साहित्य भवन [प्रा] लिमिटेड

इलाहाबाद-२

प्रकाशकों ने अपनी कहानियाँ इस संग्रह में सम्मिलित करने की अनुमति देने की कृपा की उनके प्रति हम लोग विशेष आभारी हैं। मेरी इच्छा है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य की अन्य प्रमुख धाराओं के भी इसी प्रकार वैज्ञानिक संकलन सुयोग्य लेखक तैयार करने का कष्ट करें। ऐसा हो जाने से अपने साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को समझने में हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों को बहुत सहायता मिल सकेगी।

हिन्दी विभाग
विश्वविद्यालय, प्रयाग
वैशाख पूर्णिमा सं० २०००

—धीरेन्द्र वर्मा

अनुक्रम

भूमिका

भारतवर्ष में कथा-कहानियों का इतिहास सहस्रों वर्ष प्राचीन है। इसका प्रारम्भ उपनिषदों की रूपक-कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा बौद्ध साहित्य की जातक-कथाओं से होता है। परन्तु आजकल साहित्य के जिस अंग को हम कहानी कहते हैं और जिस प्रकार की कहानी प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत है, उसका इतिहास केवल कुछ ही वर्षों का है। यों प्रयाग की सुप्रसिद्ध मासिक-पत्रिका 'सरस्वती' और काशी के माधव मिश्र द्वारा संपादित 'सुदर्शन' के प्रकाशन के साथ ही साथ १९०० ई० में आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्म हुआ था, परन्तु कहानी के आधुनिक कलारूप का विकास प्रेमचन्द के हिन्दी-प्रांगण में प्रवेश करने के साथ १९१५-१६ में हुआ। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' ('सरस्वती', जून १९१५) तथा प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' ('सरस्वती' जून १९१६) हिन्दी की सर्वप्रथम उच्च कोटि की कहानियाँ हैं और उन्हीं से आधुनिक कलापूर्ण कहानियों की सृष्टि प्रारम्भ हुई। हिन्दी की कलापूर्ण कहानियों का इतिहास केवल पच्चीस वर्षों का इतिहास है।

कथा साहित्य का इतिहास

भारतवर्ष में कथा साहित्य के विकास के मुख्य तीन युग हैं। प्राचीन काल में उपनिषदों की रूपक-कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा जातक-कथाओं का उल्लेख पहले आ चुका है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन कथाओं का महत्व बहुत अधिक है, परन्तु साधारण जनता कहानी को जिस अर्थ में ग्रहण करती है, उस अर्थ में इन कहानियों का महत्व उतना अधिक नहीं है क्योंकि उनका उद्देश्य मनोरंजन नहीं था, वरन् कहानी के रूप में किसी गम्भीर तत्व की आलोचना अथवा नीति और धर्म की शिक्षा ही इनका एकमात्र ध्येय था। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने लेख 'कादम्बरी से चित्र' में सत्य ही लिखा है कि :

पृथ्वी पर सब जातियाँ कथा-कहानियों को सुनना पसन्द करती हैं, किन्तु केवल प्राचीन भारतवर्ष को ही क़िस्से-कहानियों का शौक न था। सभी सभ्य देश अपने साहित्य में इतिहास, जीवन-चरित्र और उपन्यासों का संचय करते हैं, परन्तु भारतवर्ष के साहित्य में यह बात नहीं देख पड़ती।

[प्राचीन-संस्कृत : इन्डियन प्रेस संस्करण पृ० ५७]

वास्तव में संस्कृत-साहित्य में मनोरंजन के लिए लिखी गई कथा-कहानियों का बहुत अभाव है। 'वासवदत्ता' 'कादम्बरी' 'दशकुमार चरित्र' इत्यादि कुछ इनी-गिनी कथाएँ ही संस्कृत साहित्य की निधि हैं। परन्तु साहित्य में इसका प्रभाव होने पर भी संभव है साधारण जनता में कथा-कहानियों का प्रसार पर्याप्त मात्रा में हो रहा हो। अवंती-नगरी की बैठकों में बैठ कर लोग राजा उदयन की कथा कहते थे, इसका प्रमाण 'मेघदूत' में प्राप्त है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने उन कथाओं का उल्लेख नहीं किया जिससे हम उस काल की कहानियों का आस्वादन पा सकते, परन्तु इतना तो निश्चित है कि देश के अन्य भागों में और भी कितने 'उदयनों' की कथा वृद्ध लोग अपने उत्सुक श्रोताओं को सुनाते रहे होंगे। बहुत दिन बाद विक्रमादित्य, भरथरी (भर्तृहरि), मुंज और राजा भोज की कथाएँ भी वृद्ध लोग उसी चाव से अपने श्रोताओं को सुनाते रहे होंगे और मध्य-काल में आल्हा-ऊदल, पृथ्वीराज तथा अन्य शूर-वीरों की कहानियाँ भी उसी प्रकार कथाओं की श्रेणी में सम्मिलित कर ली गई होंगी। ये कथाएँ मौखिक प्रथा से निरंतर चलती रहती थीं। इनमें प्रसिद्ध और लोक-प्रचलित राजाओं तथा शूर-वीरों की वीरता, प्रेम, न्याय, विद्या और वैराग्य इत्यादि गुणों का अतिरंजित वर्णन हुआ करता था। 'सिंहासन बत्तीसी' 'बैताल-पच्चीसी' तथा 'भोज-प्रबन्ध' इत्यादि कथा-संग्रह उन्हीं असंख्य कहानियों के कुछ अवशेष-मात्र बच गये हैं।

महाभारत के उपाख्यानों, उपनिषदों की रूपक-कथाओं तथा जातक-कथाओं की परम्परा भी लोप नहीं हुई, वरन् पुराणों में उस परम्परा का एक विकसित रूप मिलता है। इन पुराणों में आर्यों की अद्भुत कल्पना-

शक्ति ने असंख्य नये देवी-देवताओं की सृष्टि की और उनके सम्वन्ध में कितनी ही तरह की कहानियों की सृष्टि हुई। आजकल की बुद्धिवादी जनता उन पौराणिक कथाओं को कपोल-कल्पना कह कर उनकी उपेक्षा और अवहेलना कर सकती है, परन्तु भारतवर्ष की सरल जनता का इन कहानियों पर अटल विश्वास था और इनमें उसे कोई अस्वाभाविकता अथवा अतिशयोक्ति नहीं दिखाई पड़ती थी।

'कादम्बरी' तथा 'दशकुमार-चरित्र' आदि साहित्यिक रचनाओं में भाषा का आडम्बर और अद्भुत शब्द-जाल, विविध प्रकार के लम्बे-लम्बे वर्णन तथा अवांतर प्रसंग ही अधिक मिलते हैं, कथा सौन्दर्य की ओर लेखक की रुचि कम पाई जाती है। इस प्रकार की रचनाएँ हैं भी बहुत कम। इससे जान पड़ता है कि प्राचीन काल में जनता मुख्य दो वर्गों में विभाजित की जा सकती थी—एक शिक्षित द्विजों का वर्ग जो महाभारत के उपाख्यानों, जातक-कथाओं तथा पुराणों की अद्भुत कल्पनापूर्ण कथाओं से अपना मनोरंजन करती थी और दूसरा अशिक्षित शूद्रों, वर्णसंकरों तथा स्त्रियों का वर्ग जो उदयन की प्रेम-कथाओं, विक्रमादित्य के पराक्रम और न्याय की अतिरंजित कहानियों तथा भरथरी, मुज, भोज, पृथ्वीराज, आल्हा-ऊदल इत्यादि की प्रेम-वीरता तथा विद्या-वैराग्य की कथाओं से अपना मनोरंजन करती थी। एक बहुत ही छोटा वर्ग उन साहित्यिकों का था, जिन्हें कथा-कहानियों से विशेष रुचि न थी, वरन् कथा-आख्यानों की ओट में अपना पांडित्य-प्रदर्शन करना ही उनका उद्देश्य हुआ करता था।

कथा-साहित्य के विकास का दूसरा युग तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में होता है, जब उत्तर भारत में मुसलमानों का आधिपत्य फैल गया। पंजाब तो महमूद गजनवी के समय—ग्यारहवीं शताब्दी—से ही मुसलमानी राज्य का प्रांत रहा था, परन्तु तेरहवीं शताब्दी में समस्त उत्तरी भारत में मुसलमानों का आधिपत्य हो गया। इतना ही नहीं, भारत में मुसलमानों की संख्या बढ़ती ही गई और वे गाँवों तक में अधिक संख्या में बस गए। वे अपने साथ अपनी एक संस्कृति ले आए थे और ले आए थे कथा-कहानियों की एक समृद्ध परम्परा। अरब-निवासी अपने साथ 'सहस्र

रजनी-चरित्र' (Arabian Nights) तक फ़ारस देश के प्रेमाख्यान लेते आए थे। यहाँ भारत में पुराणों की कथा-परम्परा सजीव थी। इन परम्पराओं के परस्पर-संपर्क से, आदान-प्रदान से, एक नयी कथा-परम्परा का प्रारम्भ हुआ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। जिस प्रकार धर्म, कला, समाज और संस्कृति के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान दो महान् जातियों के परस्पर सम्पर्क और आदान-प्रदान से एक नये धर्म और समाज, कला और संगीत, साहित्य और संस्कृति का विकास हुआ, उसी प्रकार अथवा उससे कहीं अधिक विकास कथा-कहानियों की परम्परा में हुआ होगा, क्योंकि कथा-कहानियों का सम्पर्क साधारण जनता का सम्पर्क था, किसी वर्ग-विशेष का नहीं। धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा अन्य क्रांतियों का प्रभाव तो तत्कालीन साहित्य और इतिहास मे मिल जाता है, परन्तु कथा-कहानियों की परम्परा में जो अद्भुत क्रांति हुई होगी वह बहुत कुछ मूक मौखिक क्रांति थी। साहित्य में उसका उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी प्रेममार्गी सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों तथा लोक-प्रचलित अकबर और बीरबल के नाम से प्रसिद्ध विनोदपूर्ण कथाओं में इस परम्परा का कुछ आभास मिल जाता है, जो आगे बढ़कर अठारहवीं तथा उन्नीसवी शताब्दी में मुशी इंशाअल्लाह खाँ की 'उदयभान-चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' के रूप में प्रकट होता है। १८५०-६० ई० के आसपास जब मुद्रण यंत्र के प्रचार से कुछ कथा-कहानियों के संग्रह प्रकाशित हुए, तब 'तोता-मैना', 'सारंगा-सदावृच्छ', 'छबीली-भटियारिन', 'गुलबकावली', क़िस्सए चार यार' इत्यादि कहानियाँ जिन्हें जनता बड़े चाव से पढ़ती थी, उसी परम्परा की प्रतिनिधि कहानियाँ थीं।

मुसलमान-युग की कहानियों की प्रमुखतम विशेषता उनमें प्रेम का चित्रण है। प्रेम का चित्रण प्राचीन भारतीय साहित्य में भी पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। कालिदास के नाटक 'शकुन्तला' 'विक्रमोर्वशी' और 'मालविकाग्निमित्र'; भवभूति की 'मालतीमाधव', हर्ष की 'रत्नावली'; शूद्रक की 'मृच्छकटिक' तथा बाण की 'कादम्बरी' में प्रेम का ही चित्रण मिलता है। पुराणों में भी गोपियों और श्रीकृष्ण की रासलीला, उषा-अनिरुद्ध

और नल-दमयन्ती की प्रेम-कथाएँ विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। लोक-प्रचलित कहानियों में भी राजा उदयन की प्रेम-कथाएँ बड़े चाव से सुनी जाती थीं। सच बात तो यह कि गुप्तकाल से ही उत्तर भारत में एक ऐसी संस्कृति का विकास हो रहा था, जिसमें प्रेम और विलासिता की ही प्रधानता थी। फिर इधर मुसलमान अपने साथ लैला-मजनू और शीरी-फ़रहाद की प्रेम-कथाएँ ले आये थे। दोनों के संपर्क से कहानी की नयी परम्परा चल निकली, उसमें प्रेम की प्रधानता स्वाभाविक ही थी। प्रेम-मार्गी सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों का विशद् चित्र देखिए। इन कहानियों का कथानक फारस देश के प्रेमाख्यानों के आधार पर भारतीय वातावरण के अनुरूप कल्पित हुआ। नल-दमयन्ती, उषा-अनिरुद्ध और शकुन्तला-दुष्यन्त इत्यादि भी भारतीय प्रेम-कथाओं के साथ फ़ारसी प्रेमाख्यानों का सम्मिश्रण कर भारतीय वातावरण के अनुरूप आदर्शों की रक्षा करते हुए इसी प्रकार की कितनी ही प्रेम-कहानियाँ जनता में प्रचलित रही होंगी। इन कहानियों में पारलौकिक और विशुद्ध प्रेम से प्रारम्भ करके विषय-भोगजन्य अश्लील प्रेम तक का चित्रण मिलता है। प्रेममार्गी सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों में प्रेम का आदर्श विशुद्ध रूप में मिलता है और उसमें स्थान-स्थान पर अलौकिक और पारलौकिक प्रेम की ओर भी संकेत होता है। जायसी के 'पद्मावत' को ही लीजिए—उसमें रतनसेन और पद्मावती का प्रेम कितना विशुद्ध और आदर्श है। मुंशी इंशाअल्लाह खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' में भी प्रेम का वही रूप मिलता है। धीरे-धीरे समय बीतने पर राजकुमारों और राजकुमारियों के आदर्श और विशुद्ध प्रेम के स्थान पर साधारण प्रेमियों और नायक-नायिकाओं के लौकिक प्रेम का भी प्रदर्शन होने लगा और क्रमशः वासना-जनित भोग और विलास की भी अभिव्यक्ति होने लगी। 'छबीली भटियारिन', 'तोता-मैना' और 'गुल-बकावली' इत्यादि कहानियों में इसी लौकिक प्रेम तथा भोग-विलास का चित्रण मिलता है।

इस युग की कहानियों की दूसरी विशेषता हास्य और विनोद की अवतारणा थी। गम्भीर प्रकृति वाले आर्य हास्य-विनोद से दूर ही रहते

थे. परन्तु मुसलमान प्रायः विनोद-प्रिय होते थे। इसीलिए उनके संसर्ग से विनोद-प्रिय कहानियों की सृष्टि आरम्भ हो गयी। अकबर और बीरबल के नाम से प्रसिद्ध विनोदपूर्ण कहानियों की सृष्टि इसी काल में हुई थी। इस युग की तीसरी प्रमुख विशेषता अस्वाभाविक, अतिप्राकृतिक और अति-मानुषिक प्रसंगों की अवतारणा थी। यों तो पौराणिक कथाओं में भी इसी प्रकार के प्रसंग पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, परन्तु पुराणों में जहाँ आर्यों की सृजनात्मक कल्पना प्रतीकवादी ढंग से अधिकांश देवी-देवता तथा अन्य शक्तियों की सृष्टि करती थी, वहाँ इन कहानियों में प्रतीक की भावना है ही नहीं, वरन् कथा को मनोरंजक बनाने के लिए और कभी-कभी कथा को आगे बढ़ाने के लिए भी अभौतिक अथवा अतिभौतिक सत्ताओं तथा अस्वाभाविक और अतिमानुषिक प्रसंगों का उपयोग किया जाता था। उड़नखटोला, उड़नेवाला घोड़ा, बातचीत करनेवाले मनुष्यों की भाँति चतुर पशु और पक्षी. प्रेम, राक्षस, देव, परी और अप्सरा इत्यादि की कल्पना-केवल कल्पना-मात्र थी, इनसे किसी आध्यात्मिक सत्य अथवा गंभीर तत्व की गवेषणा नहीं होती थी, केवल कथा में एक आकर्षण और सौंदर्य आ जाता था। उदाहरण के लिए कुतुबन की 'मृगावती' में राजकुमारी मृगावती उड़ने की विद्या जानती थी। मंझन-कृत 'मधुमालती' में अप्सराएँ मनोहर नामक एक सोते हुए राजकुमार को रातो-रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आती हैं। मनोहर से अचल प्रेम होने के कारण जब मधुमालती की माता क्रोध में आकर उसे पक्षी हो जाने का शाप देती है, तो राजकुमारी पक्षी बनकर उड़ने लगती है, फिर भी उसे मनुष्यों की भाँति वाणी, भाषा और पहचान की शक्ति है। 'पद्मावत' में हीरामन तोता तो पूरा पंडित है और प्रेम-दूत बनने में नल के हंस का भी कान काटता है। 'रानी केतकी की कहानी' में तो इस प्रकार के अस्वाभाविक और अतिमानुषिक प्रसंग आवश्यकता से अधिक मिलते हैं।

भारतीय कहानियों के विकास का तीसरा युग बीसवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। १७५० ई० से ही अंग्रेजों ने भारत में अपनी जड़

जमाना प्रारम्भ कर दिया था और १८५७ ई० तक सारे भारतवर्ष में उनका साम्राज्य स्थापित हो गया। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के लिए स्कूल और कालेज खोले, न्यायालयों की सृष्टि की, मुद्रण-यंत्र का प्रचार किया और रेल, तार, डाक, अस्पताल इत्यादि खोले। साथ ही ईसाई मिशनरियों ने घूम-घूम कर अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। इसके फ़लस्वरूप हमारे साहित्य, संस्कृति, धर्म, समाज और राजनीति इत्यादि सभी क्षेत्रों में एक अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई पड़ा। कहानी-साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा और उसमें भी अद्भुत परिवर्तन हुआ। परन्तु तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों के आगमन से कहानी-साहित्य में जो परिवर्तन हुआ था, उससे यह नितांत भिन्न था। आधुनिक काल में पाश्चात्य कथा-साहित्य और परम्परा से सम्पर्क हुआ ही नहीं और यदि हुआ भी तो बहुत कम, क्योंकि अँग्रेजी ने अपना साम्राज्य तो स्थापित अवश्य किया; परन्तु मुसलमानों की भाँति वे भारत में बसे नहीं और अपने को भारतीय जनता से दूर ही रखते रहे। फिर भी पाश्चात्य साहित्य, संस्कृति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और भौतिक विचारधारा का भारतवासियों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आधुनिक काल में जनता की रुचि, विचार, भावना, आदर्श और दृष्टिकोण प्राचीन काल से एकदम भिन्न हो गया और इतना अधिक भिन्न हो गया कि प्राचीन कहानी को अब हम कहानी मानने के लिए भी प्रस्तुत नहीं होते। राजकुमारों और राजकुमारियों की प्रेम-कथाएँ, राजा-रानी की आश्चर्यजनक बातें, विक्रमादित्य की न्याय-कहानियाँ, राजा भोज का विद्याव्यसन और दान की कथाएँ, कर्ण और दधीचि का दान, अर्जुन और भीम की वीरता हमें कपोलकल्पना जान पड़ने लगीं। फल यह हुआ कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से कहानी की एक बिलकुल नयी परम्परा चल निकली जिसे 'आधुनिक कहानी' कहते हैं।

प्राचीन और आधुनिक कहानियों का अन्तर

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है प्राचीन और आधुनिक कहानियों में महान् अन्तर है और इस अन्तर का कारण उन्नीसवीं शताब्दी मे

पाश्चात्य संस्कृति और विचारों के सम्पर्क से उत्पन्न एक नवीन जागृति और चेतना है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से हमारे दृष्टिकोण में महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया। आधुनिक शिक्षा की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—यह आलोचनात्मक और वैज्ञानिक है; यह सन्देह का पोषण करती है और गुरुडम की विरोधी है; प्रकृति की भौतिक सत्ताओं पर विश्वास करती है और अभौतिक अथवा अतिभौतिक सत्ताओं की अविश्वासी है, व्यक्तिगत स्वाधीनता की घोषणा करती है और रूढ़ियों; परम्पराओं तथा अंधविश्वासों का विरोध करती है। इस बुद्धिवाद के प्रभाव से हमें भूत, प्रेत, जिन्न, देव, राक्षस, उड़न-खटोला, उड़नेवाला घोड़ा इत्यादि अभौतिक अथवा अतिभौतिक, अप्राकृत अथवा अतिप्राकृत अमानुषिक सत्ताओं में अविश्वास होने लगा। फलतः कहानियों में इनका उपयोग असह्य जान पड़ने लगा। इस प्रकार आधुनिक काल में कहानी की सृष्टि करने में केवल आकस्मिक घटनाओं (Chances) और संयोगों (Coincidences) का ही सहारा लिया जा सकता है। प्रसाद, ज्वालादत्त शर्मा और विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रारम्भिक कहानियों में यही हुआ भी। कहानी-लेखक को कथानक चुनने और उसका क्रम सजाने में अधिक सतर्क रहना पड़ता था, क्योंकि अभौतिक तथा अतिभौतिक सत्ताओं के लोप से कथा की मनोरंजकता का सारा भार आकस्मिक घटनाओं और संयोगों के कौशलपूर्ण प्रयोग पर आ पड़ा। ठीक इसी बीच भारतवर्ष में मनोविज्ञान के अध्ययन की ओर विद्वानों की अभिरुचि बढ़ने लगी। लोगों को यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि देखने और सुनने जैसे साधारण कार्यों में भी आँखों और कानों की अपेक्षा मस्तिष्क का ही अधिक महत्वपूर्ण कार्य होता है। इस प्रकार हमें मानव-मस्तिष्क की व्यापक महत्ता का बोध हुआ और यह अनुभव होने लगा कि आकस्मिक घटनाओं तथा संयोग की अपेक्षा जीवन में मनुष्य के मस्तिष्क और मन का कहीं अधिक प्रभाव और महत्व है। संसार का वास्तविक नाटक मानव-मस्तिष्क और मन का नाटक है; आँख, कान तथा अन्य इन्द्रियों का नहीं। फलतः कहानियों में इसी मानव-मस्तिष्क और मन के नाटक का चित्रण होने लग गया। अभौतिक

और अतिभौतिक सत्ताओं के निराकरण से कहानियों की मनोरंजकता में जो कमी आ गई थी, उसे इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने पूरा ही नहीं किया, वरन् और आगे भी बढ़ाया। जैसे स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है—आधुनिक कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ चित्रण को अपना ध्येय समझती है।

संक्षेप में, प्राचीन काल की कहानियों में मानव की बाह्य प्रकृति का चित्रण हुआ करता था। केवल आकस्मिक घटनाओं और संयोगों से कहानी की सृष्टि हुआ करती थी, जिसमें मनोरंजन के लिए और कहीं-कहीं कथा को आगे बढ़ाने के लिये अभौतिक और अतिभौतिक सत्ताओं का उपयोग होता था। इन सत्ताओं में प्रतीक की भावना न थी और यदि कहीं थी तो केवल बाह्य शक्ति की प्रतीक होती थी, अंतःशक्ति की नहीं। परन्तु आधुनिक काल की कहानियों में मानव की अंतःप्रकृति का चित्रण होने लग गया, जिनमें अभौतिक और अप्राकृत सत्ताओं का उपयोग नहीं होता। जब कभी इन सत्ताओं का उपयोग होता भी है, जैसे कि प्रेमचन्द और सुदर्शन की कुछ कहानियों में मिलता है, तब ये सत्ताएँ किसी अंतः-शक्ति की प्रतीक होती हैं, वाह्य शक्ति की नहीं। इस अंतःप्रकृति के चित्रण ने हमें मानव-चरित्र और भावना नाम की अद्भुत वस्तु दी। अब तक मानव, देव, दानव, राक्षस आदि अतिभौतिक और अतिप्राकृत सत्ताओं तथा नियति के हाथों का एक कठपुतला मात्र था, वे उसे जैसे नचाते वह नाचता था, उसे विचार-स्वातंत्र्य न था, न उसकी भावना ही कोई महत्व रखती थी, परन्तु अब मानव को विचार-स्वातंत्र्य मिल गया है, वह जो भी काम करता है अच्छी तरह सोच-विचार कर करता है, उसके कामों का प्रभाव उसके चरित्र पर भी पड़ता है। आधुनिक काल में मानव-चरित्र और मानव-मस्तिष्क की प्रधानता स्वीकार कर ली गई है और उन्हीं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने कहानी को मनोरंजकता प्रदान की। प्राचीन कहानियों की अपेक्षा आधुनिक कहानी की आत्मा अधिक सजीव, गम्भीर और सूक्ष्म है।

प्राचीन कहानियों में अधिकांश राजा, राजकुमार और राजकुमारियों

का ही चित्रण हुआ करता था। सच बात तो यह है कि प्राचीन काल में साधारण जनता का कोई विशेष महत्व ही न था। राजा का वाक्य ही राज्य-विधान हुआ करता था। राजा, रानी, राजकुमार, मन्त्री, सामन्त इत्यादि कुछ थोड़े-से ही लोग जीवन का सुख पाते थे, शेष मनुष्य पैदा होते थे, खाते-पीते थे और मर जाते थे। इसलिए प्राचीन कहानियों में राजा, रानी और राजकुमार आदि का ही चरित्र होता था। परन्तु आधुनिक काल में सार्वजनिक समानाधिकार की भावना बढ़ चली। विधान और शिक्षा की दृष्टि से सभी मनुष्यों को समान अधिकार मिला। स्त्री पुरुष, शूद्र-ब्राह्मण किसी में कुछ भेद न रहा। स्वच्छन्दता की भावना के जोर पकड़ने से सामान्य मानवता के यथार्थ चित्रण की ओर लेखकों की अभिरुचि बढ़ने लगी। अस्तु, आधुनिक कहानी में राजा, रानी और राजकुमार के स्थान पर जुम्मन शेख, अलगू साहू, घीसू चमार, मुन्नू मेहतर, महादेव सोनार, सेठ छङ्गामल, लहनासिंह जमादार, वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, प्रोफेसर, कवि, क्लर्क, दीवान, मिनिस्टर इत्यादि सभी लोगों के जीवन का चित्र उपस्थित किया जाने लगा। फिर प्राचीन कहानियों में अधिकांश प्रेम का ही चित्रण हुआ करता था, परन्तु अब प्रेम के अतिरिक्त अन्य भावों और भावनाओं का भी चित्रण होने लगा है। सारांश यह है कि आधुनिक काल में कहानियों के विषय और उत्पादन का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो गया है।

प्राचीन काल में कहानियों का प्रारम्भ बिना किसी भूमिका के ही हुआ करता था। 'एक राजा था और उसके दो रानियाँ थीं' कह कर ही कहानी का आरम्भ कर दिया जाता था। जनता को इससे अधिक परिचय की आवश्यकता भी न थी। राजा शब्द निकलते ही सरल जनता के अंतर्नयनों के सामने एक सुन्दर, सुडौल, विलासी नवयुवक का चित्र उपस्थित हो जाता था, जिसके वैभव और ऐश्वर्य का कोई अन्त ही नहीं और वह उत्सुक होकर पूछ बैठती थी 'तो उस राजा का क्या हुआ?' परन्तु आधुनिक काल में राजा शब्द निकलते ही संशयवादी और बुद्धिवादी जनता अविश्वास की भावना से सिर हिला कर प्रश्न कर बैठती है कि वह राजा

किस देश का अधिपति था ? वह किस युग में राज्य करता था ? किस वंश का वह भूषण था ? उसका नाम क्या था ? और उसके शासन-काल की मुख्य ऐतिहासिक घटनाएँ क्या-क्या थीं ? इत्यादि। कहानीकार भी अब पहले से चतुर हो गए हैं। वे भी खास कर एक पांडित्यपूर्ण कहानी सुना देते हैं कि उस राजा का नाम आदित्यसेन था, वह विदर्भ देश का राजा था और राजा नल की बीसवीं पीढ़ी में पैदा हुआ था। ईसा से ८०२ वर्ष पूर्व उसने आठ अवश्वमेध यज्ञ किये थे और उसके बहुत से सिक्के और शिला-लेख अमुक नगर में मिले हैं। इस पांडित्यपूर्ण उत्तर से जनता को फिर से अविश्वास करने का साहस ही नहीं होता। जनता के सन्देहों का समुचित उत्तर तो गल्पों की काल्पनिक कथाओं में नहीं दिया जा सकता, फिर भी उसे भुलावा तो दिया ही जा सकता है और आधुनिक कहानी-लेखकों ने वही किया भी। अपनी कहानी की काल्पनिक कथा को सत्य घटना का रूप देने के लिए आधुनिक कहानी-लेखक एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है कि उसकी गम्भीरता, स्वाभाविकता और यथार्थवादिता से प्रभावित होकर पाठकों को पूरी कहानी को सत्य मानना ही पड़ता है। कम से कम कहानी पढ़ते समय तो वह कहानी की लिखी सभी बातों को सत्य समझता है।

कहानी में वातावरण की सृष्टि से वही प्रभाव पड़ता है जो नाटकों में रङ्गमंचीय कौशल (Stagecraft) से पड़ता है। मध्ययुग में यदि निर्जन निकुंज में संध्या की गोधूलि में राधाकृष्ण का मिलन दिखाना होता था, तो रासलीलाओं में सूत्रकार रङ्गमंच पर आकर इतना कह जाया करता था कि अब राधा और कृष्ण का यमुना-तट पर निर्जन निकुंज में संध्या-समय मिलन होगा और दर्शकों को उसी सूखे रङ्गमंच पर अपनी कल्पना-शक्ति से यमुना-तट, निर्जन निकुंज और गोधूलि इत्यादि का चित्र उपस्थित कर लेना पड़ता था। परन्तु आधुनिक नाटकों में इसी दृश्य का अभिनय करने के लिए पहले रङ्गमंच पर एक पर्दा डालकर यमुना-तट और निर्जन निकुंज का चित्र उपस्थित कर दिया जाता है, प्रकाश को धुँधला करके संध्या समय का भान किया जाता है और फिर

मोर-मुकुट, गुंजा-माल, पीताम्बर की कछनी धारण किये, सुरीली बाँसुरी से अमृत की धारा बहाते हुए श्रीकृष्ण और इसी प्रकार यथार्थ जान पड़ने वाली वेशभूषा में सज्जित राधिका का मिलन कराया जाता है। जनता इस दृश्य को देखकर कुछ समय के लिए उन्हें वास्तविक श्रीकृष्ण और राधिका मान लेती है और उस मिलन को आज से कई हज़ार वर्ष पहले की एक सत्य घटना का प्रतिबिम्ब मानकर उस पर विश्वास करती है। इसी प्रकार यथार्थ वातावरण की सृष्टि करके कहानी-लेखक एक ऐसा चित्र उपस्थित कर देता है कि कहानी पढ़ते समय पाठकगण उसे कोरी कपोल-कल्पना नहीं समझ सकते, वरन् उसे सत्य घटना का यथार्थ चित्र मानते हैं। उदाहरण के लिए देखिये गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' में नायक लहना सिंह और नायिका के प्रथम मिलन के लिए लेखक ने एक ऐसा यथार्थ वातावरण उपस्थित कर दिया है कि उसके पढ़ने के बाद पाठकों को उनके मिलन की यथार्थता में सन्देह नहीं रह जाता। लेखक कहानी के प्रारम्भ में ही वातावरण की सृष्टि करता है :

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों को चीथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तङ्ग चक्करदार गलियों में हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसाजी' 'हटो भाई जी' ठहरना भाई' 'आने दो लाला' 'हटो बाछा' कहते हुए सफ़ेद फेटों, खच्चरों और बतखों गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल से राह खेते है। क्या मज़ाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं, चलती

है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीएाों जोगिये; हट जा करका वालिए; हट जा पुत्तां प्यारिए; बच जा लम्बी बालिए। समष्टि से इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है; पुत्रों की प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है? बच जा। और फिर मुख्य कहानी का प्रारम्भ होता है।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। इत्यादि।

इस वातावरण की यथार्थवादिता से ही पाठक इतने मुग्ध हो जाते हैं कि उन्हे पूरा विश्वास हो जाता है कि लेखक जो लिख रहा है, वह कपोल-कल्पना हो ही नहीं सकती—उसकी सत्यता में उन्हे सन्देह ही नही रहता। इसी प्रकार 'कौशिक' की 'उद्धार' नामक कहानी का प्रारम्भ देखिये :

बेटी सुशीला अब रहने दे। बारह तो बज गए, सबेरे देखा जायगा। आज दिन भर और इतनी रात काम करते ही बीती।

रात के बारह बज चुके है। संसार का अधिकाश भाग निद्रा की गोद में खर्राटे ले रहा हैं। जाग केवल वे लोग रहे है, जिन्हे जागने मे सोने की अपेक्षा विशेष आनन्द और सुख मिलता है, अथवा वे लोग, जो दिन को रात तथा रात को दिन समझते है और या फिर वे लोग जो रात के अंधकार और लोगों की निद्रावस्था से अनुचित लाभ उठाने को उत्सुक रहते हैं; परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ और प्रकार के लोग भी जाग रहे है। ये लोग वे है जिनके उदर-पोषण के लिये दिन के बारह घंटे यथेष्ट नहीं, जिनके लिए सोने और आराम करने का अर्थ दूसरे दिन फ़ाक़ा करना है; जो निद्रा देवी के प्रेमालिगन का तिरस्कार इसलिए कर रहे हैं कि उसके बदले में दूसरे दिन उन्हे क्षुधा-राक्षसी की मार सहनी पड़ेगी।

उनकी आँखें झुकी पड़ती है, सिर चकरा रहा है, परन्तु पेट को क्षुधा की यंत्रणा से बचाने के लिए वे अपनी शक्ति के बचे-खुचे परमाणुओं से काम ले रहे हैं।

एक छोटे-से घर में रेंड़ी के तेल का दीपक दिमटिमा रहा है। उसी दीपक के पास एक टूटी-फूटी चटाई पर दो स्त्रियाँ झुकी हुई बैठी हैं। उनके सामने एक नीले मखमल का लहँगा है और वे दोनों उस पर सलमे-सितारे का काम बना रही हैं। एक की उमर पचास साल के लगभग है और दूसरी की पचीस के लगभग। उनकी रुक-रुक कर चलनेवाली उँगलियाँ काम करने से मुँह मोड़ रही हैं और मौन भाषा में यह कह रही हैं कि वे इतनी थकी हुई हैं कि उनसे अधिक काम लेना उन पर अत्याचार करना है।

काम करते-करते सहसा वृद्धा ने सुई छोड़ दी। कुछ सेकिंडों तक आँखों पर हाथ रक्खे रहने के पश्चात् वह बोली—"बेटी सुशीला अब रहने दे।...." इत्यादि।

इतना पढ़ने पर कौन कह सकता है कि लेखक सत्य घटना का चित्र नहीं खींच रहा है। स्थान, काल और पात्र का विचार संभाव्य सभी बातों के यथार्थ चित्रण से आधुनिक लेखक वातावरण की सृष्टि करता है और यह सृष्टि लेखक की कल्पना पर एक रहस्यमय अवगुंठन डाल कर उसे सत्य का स्वरूप प्रदान करती है।

जिन कहानियों में लेखक को कोई असंभव घटना अथवा प्रसंग दिखाना पड़ता है, वहाँ भी लेखक इस प्रकार का वातावरण उपस्थित करता है और असंभव घटना को इस कौशल से प्रस्तुत करता है कि पाठक उस असंभव को संभाव्य मान लेता है। उदाहरण के लिए गोविन्दवल्लभ पंत की कहानी 'प्रियदर्शी' लीजिये। इसमें लेखक ने कुछ असंभव बातों का उल्लेख किया है, जैसे अशोक के चार सिपाही जब भिक्षु की हत्या करने के लिए तलवार चलाते हैं, तो भिक्षु के सिर कटने के स्थान पर उन्हीं का सिर कट कर भूमि पर लोटने लगता है। इसी प्रकार सेनापति द्वारा भिक्षु के दाहिने हाथ पर तलवार चलाने पर स्वयं उसका दाहिना हाथ कट कर

गिर पड़ता है और अन्त में जब अशोक स्वयं भिक्षु पर तलवार चलाता है, तब भिक्षु का सिर कटने के स्थान में उस पर फूल बरसते हैं। इन असंभव प्रतीत होने वाली घटनाओं को लेखक ने एक ऐसे वातावरण मे प्रस्तुत किया है कि असंभव होते हुए भी वे उस स्थान पर असम्भाव्य जान पड़ती हैं। वातावरण का ऐसा ही महत्व है। यह वातावरण आधुनिक कहानी की एक मौलिक और नवीन सृष्टि है। जिस प्रकार रात के अँधेरे में रस्सी में साँप की प्रतीति होती है, उसी प्रकार यथार्थ वातावरण के कारण एक कल्पित कथा में सत्य घटना की प्रतीति होती है। प्राचीन कहानी में इस प्रकार की कोई माया न थी।

आत्मा और वातावरण के अतिरिक्त, आधुनिक कहानी के रूप और शैली भी प्राचीन कहानियों से नितांत भिन्न है। प्राचीन काल में कहानियों की प्रायः मौखिक सृष्टि हुआ करती थी। कभी-कभी वे लिखी भी जाती थीं अवश्य, परन्तु सभी कहानियों का जनता में प्रचार मौखिक प्रथा से ही हुआ करता था, परन्तु आधुनिक काल में मुद्रण-यंत्र के प्रचार से पुस्तकें बहुत सस्ती हो गई हैं, जिन्हे साधारण जनता भी आसानी से क्रय कर सकती है। फिर आजकल के नागरिक जीवन में सामूहिक विनोदों और उत्सवों का स्थान एकांत विनोदों ने ले लिया है। इस कारण अब पहले की भांति वृद्ध लोगों को उत्सुक श्रोताओं को कहानी नहीं सुनानी पड़ती, वरन् उत्सुक पाठक अब एकांत में बैठ कर मुद्रित ग्रन्थों से कहानियों का आनन्द उठाते हैं। मासिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार से कहानियों की मौखिक प्रथा का एकदम लोप ही हो गया। इस कारण आधुनिक कहानी के रूप और शैली में एक अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया है, क्योंकि कहानी के सुनने और पढ़ने में एक महान् अन्तर होता ही है।

आधुनिक कहानी के रूप और शैली पर पाश्चात्य कहानियों के रूप और शैली का भी बहुत प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य देशों में आधुनिक कहानी का प्रारम्भ १८५० से पहले हो गया था और उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रेंच कहानियों ने अत्यधिक उन्नति कर ली थी। भारतीय कहानी-लेखकों ने पाश्चात्य महान् लेखकों की कहानियों के साहित्यिक रूप और शैली का

अनुकरण किया। फिर कला की भावना के ज़ोर पकड़ने पर कहानियों के रूप और शैली का और भी परिष्कार और परिमार्जन हुआ और इस प्रकार आधुनिक कहानी के रूप और शैली इतनी अधिक परिवर्तित हो गई कि इसे प्राचीन कहानियों की 'बिरादरी' में बैठाया ही नहीं जा सकता।

आधुनिक कहानी की परिभाषा

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर आधुनिक कहानी क्या वस्तु है? यों तो साहित्य के प्रत्येक अंग और रूप की परिभाषा प्रस्तुत करना सरल बात नहीं है, परन्तु आधुनिक कहानी की परिभाषा प्रस्तुत करना शायद सबसे कठिन है। फिर भी साहित्य के अन्य रूपों के साथ इसकी समता और विषमता प्रदर्शित कर, इसकी विशेषताओं का सूक्ष्म विश्लेषण कर इसकी व्याख्या संतोषजनक रूप से की जा सकती है।

कथानक और शैली की दृष्टि से कहानी उपन्यास के बहुत निकट है। कुछ लोग तो यहाँ तक समझते है कि कहानी और उपन्यास में विशेष अन्तर नहीं है—केवल कहानी का विस्तार उपन्यास से बहुत कम होता है। इस मत के अनुसार हम इस सारांश पर पहुँचते है कि कहानी उपन्यास का ही लघु रूप है और एक ही कथानक इच्छानुसार बढ़ाकर उपन्यास और छोटा करके कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु यह मत सर्वथा भ्रांतिपूर्ण है। कहानी उपन्यास का छोटा रूप नहीं, वरन् वह उससे एक सर्वथा भिन्न और स्वतंत्र साहित्य रूप है। बाह्य दृष्टि से कहानी और उपन्यास में समानता अवश्य है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों में विषमता स्पष्ट प्रकट हो जायगी।

उपन्यास में सबसे प्रधान वस्तु उसका कथानक हुआ करता है और बिना कथानक के उपन्यास की सृष्टि हो ही नहीं सकती। भाव-प्रधान उपन्यासों में भी एक कथानक का होना अनिवार्य होता है। परन्तु आधुनिक कहानी में कथानक का होना आवश्यक होते हुए भी अनिवार्य नहीं है, कितनी ही कहानियों में कथानक होता ही नहीं। कभी-कभी केवल कुछ मनोरंजक बातों, चुटकुलों और चित्त को आकर्षित करनेवाली सूझों

के आधार पर ही कहानी की सृष्टि हो जाया करती है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत पुस्तक में संकलित भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'मुग़लों ने सल्तनत बख़्श दी' देखिए। इसमें कथानक कुछ भी नहीं है, केवल एक मनोरंजक बात जिसे लेखक ने अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति से, केवल अपनी शैली के बल पर एक सुन्दर कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार प्रेमचन्द की कहानी 'पूस की रात' में कुछ चरित्रों के द्वारा एक वातावरण की सृष्टि की गई है, परन्तु उसमें कथा-भाग नगण्य है। इसी प्रकार 'अज्ञेय' की कहानी 'रोज' में कथानक का अंश बहुत ही गौण है। लेखक ने कुछ चरित्रों के द्वारा एक अद्भुत प्रभाव (effect) की सृष्टि की है, जिससे कथानक की ओर पाठकों का ध्यान भी नहीं जाता।

आधुनिक कहानी में जहाँ कथानक होता भी है, वहाँ कहानी का कथानक उपन्यास के कथानक से बहुत भिन्न हुआ करता है। उपन्यास में प्रायः एक मुख्य कथानक के साथ-ही-साथ दो-तीन गौण कथाएँ भी चलती रहती हैं और जहाँ गौण कथानक नहीं होते, वहाँ मुख्य कथानक ही इतना विस्तृत हुआ करता है कि उससे जीवन का पूरा चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु कहानी में अधिकांश गौण कथाएँ होतीं ही नहीं; केवल एक मुख्य कथा होती है और उससे भी जीवन का पूरा चित्र प्रकाश में नहीं आता, केवल किसी अंग-विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है। कुछ कहानियों में जहाँ मुख्य कथानक के अतिरिक्त कुछ गौण कथाएँ भी होती हैं वहाँ भी जीवन के किसी अंग-विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है, पूरे जीवन का चित्र उपस्थित नही होता। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि कहानी का कथानक अपूर्ण-सा होता है और उसे इच्छानुसार पूर्ण किया जा सकता है—आगे बढ़ाया जा सकता है। कहानी का कथानक अपने में ही पूर्ण होता है और उसे कठिनता से आगे बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार कहानी और उपन्यास में महान् अन्तर होता है।

चरित्र की दृष्टि से भी कहानी और उपन्यास में उतना ही अन्तर है जितना कथानक की दृष्टि से। उपन्यास में चरित्र भी एक आवश्यक अंग है, घटना-प्रधान तथा भाव-प्रधान उपन्यासों में भी चरित्र होते हैं और

उनका यथार्थ चित्रण किया जाता है, परन्तु कहानियों में चरित्र का होना अनिवार्य नहीं है। कितनी ही कहानियों में चरित्र होते ही नहीं, या होते भी हैं तो गौण होते हैं। उदाहरण के लिए भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'मुग़लों ने सल्तनत बख्श दी' में चरित्र है ही नहीं और 'पूस की रात' तथा 'रोज' कहानियों में चरित्र-चित्रण का प्रयास नहीं मिलता, वरन् उनमें चरित्र केवल निमित्त मात्र हैं, लेखक का मुख्य उद्देश्य वातावरण और प्रभाव की सृष्टि करना है। चरित्र-प्रधान और कथा-प्रधान कहानियों में चरित्र होते अवश्य हैं, परन्तु उपन्यासों की भाँति उनका सम्पर्ण चरित्र-चित्रण कहानी में नहीं मिलता, वरन् किसी पक्ष-विशेष का ही चित्रण मिलता है। सच तो यह है कि पूर्ण रूप से चरित्र-चित्रण के लिए कहानी में स्थान नहीं होता।

शैली की दृष्टि से कहानी और उपन्यास मे विशेष अन्तर नहीं है। केवल स्थानाभाव के कारण कहानी में विस्तृत प्रकृति-वर्णन अथवा अन्य प्रकार के वर्णनों के लिए क्षेत्र बहुत ही कम है। इसलिए कहानी की शैली अत्यन्त सुगठित और संक्षिप्त होती है।

प्रभाव-क्षेत्र (scope) और विस्तार की दृष्टि से आधुनिक कहानी एकांकी नाटक और निबन्ध के बहुत निकट है। कहानी में एकांकी नाटक और निबन्ध की ही भाँति जीवन का पूरा चित्र नहीं मिलता, वरन् उसके किसी विशेष मनोरंजक, चित्ताकर्पक एवं प्रभावशाली दृश्य अथवा पक्ष का ही चित्र मिलता है और इसका विस्तार भी उन दोनों साहित्य-रूपों (एकांकी नाटक और निबन्ध) की ही भाँति छोटा होता है, जिससे पूरी कहानी एक बैठक में ही अर्थात् डेढ़ घंटे के भीतर ही भली प्रकार पढ़ी जा सके। परन्तु इतनी समानता होने पर भी कहानी उन दोनों से सर्वथा भिन्न रहती है। एकांकी नाटक अभिनय की वस्तु है, इसलिए उसमें प्रकृति-वर्णन तथा अन्य प्रकार के वर्णनों का सर्वथा अभाव रहता है और शैली की दृष्टि से तो कहानी एकांकी नाटकों से बिल्कुल भिन्न साहित्य-रूप है। निबन्ध में स्वाभाविक वर्णन तो मिलता है और वह कहानी की भाँति सुगठित एवं संक्षिप्त शैली में होता है, परन्तु इसमें उसकी कल्पना-शक्ति

का अभाव रहता है जिसके सहारे आधुनिक कहानी में किसी मनोरंजक कथा, किसी प्रभावशाली और सुन्दर चरित्र, किसी मनोवैज्ञानिक चित्र, किसी कवित्वपूर्ण अथवा यथार्थ वातावरण तथा किसी शक्तिशाली और सुन्दर प्रभाव की सृष्टि होती है।

आधुनिक कहानी की दो विशेषताएँ हैं। प्रथम विशेषता इसमें कल्पना-शक्ति का आरोप है। यों तो साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र और विभाग में कल्पना का उपयोग आवश्यक एवं अनिवार्य हुआ करता है, परन्तु कहानी में ही शायद इसका सबसे अधिक उपयोग होता है। कल्पना ही कहानी का प्राण है। चाहे प्रेमचन्द और 'प्रसाद' के गम्भीर मानव-चरित्र का चित्रण ले लीजिए, चाहे जैनेन्द्रकुमार और भगवती प्रसाद वाजपेयी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण; चाहे हृदयेश, राधिकारमण प्रसाद सिंह और गोविन्दवल्लभ पंत की कवित्वपूर्ण वातावरण-प्रधान कहानियाँ लीजिए, चाहे 'अज्ञेय' और चंद्रगुप्त विद्यालंकार की प्रभाववादी (Impressionistic) कहानियाँ; चाहे भगवतीचरण वर्मा की व्यंगात्मक कहानियाँ लीजिये, चाहे जी० पी० श्रीवास्तव की अतिनाटकीय (Melodramatic) प्रसंगों से युक्त हास्यमय गल्प; चाहे गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ लीजिये, चाहे दुर्गा प्रसाद खत्री की रहस्यमयी और साहसिक कहानियाँ—सभी स्थानों में कल्पना की ही प्रमुखता मिलेगी। सच तो यह है बिना कल्पना के कहानी की सृष्टि हो ही नहीं सकती। किसी भावना को कहानी का रूप देने के लिए, किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रदर्शित करने के लिये, किसी प्रभाव की सृष्टि करने के लिये, किसी मनोरंजक बात को साहित्यिक रूप प्रदान करने के लिये अथवा किसी चरित्र-विशेष के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिये घटनाओं का क्रम एवं घात-प्रतिघात-संयुक्त कथानक की सृष्टि करना कल्पना-शक्ति का ही काम है। कोई भी कहानी ले लीजिये—सबकी तह में कल्पना का ही प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगा। आधुनिक कहानी में कल्पना की सबसे अधिक जादूगरी पुराण-कथा (Myth-Making) शैली में मिलती है। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि' में कल्पना के अतिरिक्त और है ही क्या? कमलाकांत

वर्मा की 'पगडंडी' देखिये—लेखक ने अमराइयों को चीर कर जाती हुई एक छोटी-सी पगडंडी देखी थी और उसी पर एक दार्शनिक भावनापूर्ण सुन्दर कहानी की सृष्टि कर दी—केवल अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति से ! वास्तव में आधुनिक कहानी की प्रमुख विशेषता कल्पना के अद्भुत आरोप में है।

आधुनिक कहानी की दूसरी विशेषता कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से कथानक, चरित्र, वातावरण और प्रभाव इत्यादि की सृष्टि करना है। किसी व्यर्थ चरित्र अथवा निरर्थक घटना और प्रसंग के लिए कहानी मे स्थान ही नहीं है। यों तो व्यर्थ चरित्र और निरर्थक घटना और प्रसंगनाटक, उपन्यास और एकांकी नाटक में भी अनावश्यक है, परन्तु स्थानाभाव के कारण कहानी में इनका निराकरण अत्यन्त आवश्यक होता है। आधुनिक कहानी साहित्य का एक विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें व्यर्थ चरित्र और निरर्थक प्रसंग उसके सौंदर्य के लिए घातक प्रमाणित हो सकते हैं।

अस्तु, आधुनिक कहानी साहित्य का विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें लेखक अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे, कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा, कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवांछित कथानक, चरित्र, वातावरण दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।

आधुनिक कहानी का प्रारम्भ

आधुनिक कहानी का प्रारम्भ 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के प्रकाशन से १९०० ई० में होता है। इससे भी पहले १८९९ ई० में वृहत्कथा के आधार पर 'कात्यायन और वररुचि की कथा' और 'उपकोशा की कथा' कहानी रूप में 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हुई थी। 'सरस्वती' में शेक्सपियर के अनेक नाटकों के अनुवाद कहानी-रूप में प्रकाशित हुए। १९०० ई० की जनवरी में 'सिम्बलीन' (Symbeline), फरवरी में 'एथेन्मवासी टाइमन' (Timon of Athens), मार्च तथा अप्रैल में 'पेरिक्लीज' (Pericles) और सितम्बर तथा अक्टूबर में 'कौतुकमय मिलन' (Comedy of Errors) प्रकाशित हुए। साथ-ही-साथ इसमें बहुत से संस्कृत नाटक

भी कहानी-रूप में प्रकाशित हुए जिनमें 'रत्नावली' और 'मालविकाग्निमित्र' की कहानियाँ अत्यन्त मनोरंजक प्रमाणित हुई। 'सरस्वती' के प्रकाशन के पूर्व ही गदाधरसिंह ने बाण की 'कादम्बरी' को एक सुन्दर अनुवाद कहानी के रूप में प्रस्तुत किया। इसी समय 'सुदर्शन' में भी पौराणिक आख्यान कहानी के रूप में प्रकाशित हो रहे थे। इस अनुवादित तथा एक बड़ी रूपांतरित रचनाओं में ही आधुनिक कहानियों का प्रारंभिक रूप मिलता है।

जून १६०० ई० में 'सरस्वती' में हिन्दी की सर्वप्रथम आधुनिक कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हुई। यह पूर्णतया मौलिक कृति नहीं कही जा सकती, क्योंकि इस पर शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' (The Tempest) की छाप बहुत स्पष्ट है, परन्तु इसके लेखक किशोरी लाल गोस्वामी ने इसे पूर्णरूप से भारतीय वातावरण के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका इन्दुमती मिरांडा की भाँति अपने पिता के साथ विन्ध्याचल से सघन वन में निवास करती है। उसने भी अपने छोटे-से जीवन में केवल अपने पिता को ही देखा और प्यार किया था, और दूसरा मनुष्य उसकी दृष्टि-पथ में नहीं आया था। सहसा एक दिन पेड़ के नीचे उसने देखा एक सुन्दर नवयुवक—अजयगढ़ का राजकुमार चन्द्रशेखर जो पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी का काम तमाम कर भाग निकला था और लोदी का एक सेनापति उसका पीछा कर रहा था। उसका घोड़ा मर चुका था और वह भी भूखा-प्यासा पेड़ के नीचे पड़ा था। प्रथम दर्शन में ही दोनों के हृदयों में प्रेम का संचार हो उठता है। इंदुमती का वृद्ध पिता, जो वास्तव में देवगढ़ का शासक था और इब्राहीम लोदी द्वारा राज्य छिन जाने पर अपनी एक मात्र कन्या को लेकर जंगल में निवास करता था, अंग्रेजी नाटक 'प्रास्पेरो' की ही भाँति युगल प्रेमी के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये चन्द्रशेखर से कठिन परिश्रम लेता है और स्वयं पहाड़ी के पीछे खड़े होकर नवयुवक हृदयों का प्रेम-सम्भाषण सुनता है। वृद्ध पिता ने प्रतिज्ञा की थी कि कोई इब्राहीम लोदी को मारकर उसके बैर का बदला लेगा, उसी से वह अपनी कन्या का विवाह करेगा। चन्द्रशेखर ने अनजाने

ही यह प्रतिज्ञा पूरी कर दी थी और उसका प्रेम इन्दुमती के प्रति विशुद्ध और आदर्श था, इसलिये वृद्ध पिता ने युगल-प्रेमियों का विवाह करा दिया और वे सुखपूर्वक अपनी राजधानी में राज्य करने लगे। इस प्रकार 'टेम्पेस्ट' की छाया लेकर एक राजपूत कहानी के आधार पर हिन्दी में सर्वप्रथम मौलिक : कहानी की सृष्टि हुई।

इसके पश्चात् अन्य अनेक कहानियाँ अनुवादित, रूपांतरित और मौलिक भी 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' में निकलती रहीं। १९०० ई० से १९१० ई० तक आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रयोगात्मक युग था, जब कि कहानी की कोई निश्चित परम्परा न थी और उसके साहित्यिक रूप तथा शैली के सम्बन्ध में कोई निश्चित आदर्श सामने न था। कितने ही लेखक अवश्य कुछ फुटकर कहानियाँ गद्य में और छन्दबद्ध भी लिखा करते थे जो समय-समय पर मासिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं, परन्तु वे केवल कुछ अनिश्चित प्रयोग के रूप में थीं। उनमें न कोई क्रम था न आदर्श, न कोई निश्चित रूप था न शैली। एक ओर टूटी-फूटी भाषा में छन्दबद्ध कहानियाँ प्रकाशित हो रही थी—'जम्बुकी न्याय' ('सरस्वती', मार्च १९०६) में पंचतन्त्र और हितोपदेश की भाँति उल्लू, स्यार, गिरगिट कौआ इत्यादि की उपदेशपूर्ण कथा है; जो ईसप की कहानियाँ (Aesop's Fables) की याद दिलाती है। विद्यानाथ शर्मा[1] की कहानी 'विद्या-बहार' ('सरस्वती', मार्च १९०९) में काशी का एक विद्वान् गेडवाने का राजा होता है और उसे चौपट कर देता है। कहानी के अन्त में लेखक यह उपदेश देता है :

अनुभव बिना है सूना पुस्तक ज्ञान
होते नहीं विवेकी सब विद्वान।

इसी प्रकार 'कुलीनाथ पांडे' ('सरस्वती', मई १९०९ ई०) में सर-

---

१. मेरे मित्र श्री रामेश्वर गुरु 'कुमार हृदय' ने मुझे सूचित किया है कि विद्यानाथ शर्मा दूसरे कोई नहीं, हमारे वृद्ध साहित्यिक महारथी व्याकरणाचार्य स्वर्गीय श्री कामता प्रसाद गुरु ही थे।

कारी चपरासी और साहबों की अन्धाधुन्धी का सहारा लेकर एक कहानी खड़ी कर दी गई है, जिसमें कुलीनाथ पांडे साहब की खुशामत करके कुली से राजा हो जाता है और 'निन्नाबे का फेर' ('सरस्वती' अगस्त १६१० ई०) में मैथिलीशरण गुप्त ने एक सुन्दर कहानी का रूप प्रस्तुत किया है। इन छन्दबद्ध कहानियों में उपदेश की भावना भरी है और इनमें हितोपदेश तथा ईसप की कहानियों की परम्परा मिलती है। दूसरी ओर 'सुदर्शन' में माधव मिश्र पौराणिक आख्यायिकाएँ लिख रहे थे, जिनमें प्राचीन काल की झलक मिलती है। सत्य और संतोष का फल प्रदर्शित करने वाली नाभाग की कथा ('सुदर्शन' आषाढ़ सं० १६६०) इस प्रकार की एक अपूर्व रचना है। 'सरस्वती' में भी श्री सूर्य नारायण दीक्षित ने मार्च, १६०६ में जैमिनी पुराण के आधार पर 'चन्द्रहास का अद्भुत उपाख्यान' लिखा। यह तो प्राचीन परम्परा के आधार पर नये प्रयोग थे। इनके अतिरिक्त एक ओर बङ्ग महिला, पार्वतीनंदन, उदयनारायण बाजपेयी इत्यादि लेखक बङ्गला, फ्रेंच, जर्मन और अँगरेजी भाषा से कहानियों का अनुवाद और रूपांतर उपस्थित कर रहे थे, दूसरी ओर कर्नल जेम्स टाड के 'राजस्थान' तथा टेलर, (Toylor) मैकमिलन (Mac Millon) आदि अंग्रेजी लेखकों द्वारा भारतीय वीरों की वीरता और प्रेम-सम्बन्धी उपन्यासों के आधार पर मध्यकालीन राजपूतों; मराठों और पठानों की वीरता और प्रेम कहानियाँ लिखी जा रही थीं। वृन्दावनलाल वर्मा ने सितम्बर १६०६ ई० में 'राखीबन्द भाई', अक्तूबर १६१० ई० में 'तातार' और 'एक वीर राजपूत,' नामक कहानियाँ 'सरस्वती' में लिखीं और मैथलीशरण गुप्त ने भी 'नकली किला' नामक एक कहानी दिसम्बर १६०६ ई० में गीतिका छन्दों में लिखी' जिसमें बूँदी के हाड़ा कुम्भा की अद्भुत वीरता और त्याग का वर्णन है।

परन्तु १६०० से १६१० ई० के बीच के इस प्रयोगात्मक युग की सबसे महत्वपूर्ण और सुन्दरतम रचना बङ्ग महिला की 'दुलाईवाली' ('सरस्वती,' मई १६०७) कहानी थी, जिसमें प्रतिदिन के जीवन से एक साधारण घटना लेकर स्थान-चलन (Local colour) और यथार्थवादी

चित्रण की सहायता से एक प्रभावशाली कहानी की सृष्टि की गई है। वंशीधर अपने हँसमुख और विनोदप्रिय मित्र नवलकिशोर और उनकी पत्नी से मिलने की आशा में जल्दी-जल्दी अपनी पत्नी को साथ ले बनारस से इलाहाबाद को प्रस्थान करते हैं, परन्तु मुग़लसराय स्टेशन पर उन्हें अपने मित्र के दर्शन नहीं हुए। मिर्जापुर स्टेशन पर उन्हे अपने ही डिब्बे में 'दुलाईवाली' और एक अन्य स्त्री मिली। स्त्री का पति शायद स्टेशन पर छूट गया था और वह विलाप कर रही थी। वंशीधर ने उसे सांत्वना दी कि इलाहाबाद में वे उसके पति की खोज करेंगे। इलाहाबाद में जब वंशीधर स्त्री के पति की खोज में इधर-उधर पूछताछ करते है तभी उस स्त्री के पति नवलकिशोर, जो 'दुलाईवाली' के रूप में उसी डिब्बे में बैठे सब तमाशा देख रहे थे, रूप-परिवर्तन कर प्रकट हो जाते हैं और इस प्रकार दोनों मित्रों का मिलन होता है। इस मनोरंजक कथानक में लेखिका की सुन्दर और व्यंजनापूर्ण लेखन-शैली तथा स्थान-चलन-संयुक्त यथार्थ-से वार्तालाप ने तो जान ही डाल दी है। उदाहरण के लिए गाड़ी में रोती हुई नवलकिशोर की पत्नी से गाँव वाली स्त्रियों की बातचीत सुनिए।

दूसरी—भला प्रयाग जी काहे न जानी थी; ले कहै के नाहीं, तोहरे पच के धरम से चार दाई नहाए चुकी हई। एसों हो सोमवारी अउर गहन दका लाग रहा। तउन तोहरे काशी नहाय गइ रहे।

पहली—आवै जाय के तो सब अउतैं जात बटलै बाटन। फुन वह सायत तो बेचारी विपत में न पड़ल बाटिन। हे हम पच हइ, राजघाट टिकस कटऊली, मोगल के सरायें उतरलीह, हों दे फुन चढ़लीह।

[कुसुम संग्रह, पृष्ठ ८७]

सन् १९११ ई० में काशी में 'इन्दु' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और तब से कहानियों की एक अविच्छिन्न धारा और परम्परा चल निकली। १९११ ई० से जयशंकर प्रसाद की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' 'इन्दु' में प्रकाशित हुई और हास्यरस के लेखक जी० पी० श्रीवास्तव की प्रथम कहानी भी १९११ ई० में ही 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। उसी साल 'भारत मित्र' में 'उसने कहा था' कहानी के अमर लेखक चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रथम

कहानी 'सुखमय जीवन' भी प्रकाशित हुई थी। अस्तु, १६११ ई० ने हिन्दी को तीन उच्चकोटि के कहानी-लेखक दिए, इसीलिए, आधुनिक हिन्दी कहानी का वास्तविक प्रारम्भ १६११ ई० से ही समझना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारतवर्ष में नगरों की संख्या बढ़ती जा रही थी और इन नगरों के उदय के साथ ही साथ नागरिक जीवन और नागरिक सभ्यता का विकास भी हो रहा था। पश्चिमी-शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था और नगरों का जीवन प्रतिदिन पहले की अपेक्षा अधिक जटिल और आडम्बरपूर्ण होता जा रहा था। क्रमशः व्यक्तिवाद का भी विकास बड़ी शीघ्रता से हो रहा था और लोग अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन की साधारण घटनाओं को भी महत्व देने लग गए थे। धीरे-धीरे समय की प्रगति के साथ-साथ प्रतिदिन के साधारण प्रसंगों के द्वारा भी जनता के गम्भीर और अंतर्निहित भावों तथा विचारों को प्रभावित कर सकने की संभावना बढ़ती जा रही थी। लेखकगण साधारण घटनाओं और प्रसंगों को स्थान-चलन और यथार्थ-चित्रण के बल पर प्रभावशाली बनाने लग गए थे। बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी इस ढंग की एक सुन्दर रचना थी और शायद इसी के प्रभाव से अथवा स्वतन्त्र रूप से 'प्रसाद' ने 'ग्राम' और गुलेरी ने 'सुखमय जीवन' में इसी प्रकार की साधारण परिस्थिति लेकर मनोरंजक और उच्चकोटि की कहानी लिखी। 'ग्राम' कहानी का नायक मनोहरलाल ज़मींदार बड़े रोब-दाब और शान-शौकत से ज़मींदारी के गाँव जा रहा है, परन्तु उसे उस गाँव का रास्ता मालूम नहीं है। वह राहियों से, बाग में खेलते हुए लड़कों से रास्ता पूछता है, परन्तु कोई ठीक रास्ता नहीं बता पाता। यों ही भटकते-भटकते शाम हो जाती है, अन्त में उसे एक लड़की मिलती है, जो उसे अपने घर लिवा जाती है और उसकी विधवा माँ अपनी करुण गाथा सुनाती है कि किस प्रकार उसके पति की ज़मींदारी बेईमानी से एक बनिये कुन्दनलाल के हाथ चली गई और वे माँ-बेटी अब कितने कष्ट से दिन काट रही हैं। मनोहरलाल और कोई नहीं उसी कुन्दनलाल के बेटे हैं। आकस्मिक घटनाओं और संयोग का सहारा लेकर

लेखक ने एक विषम और करुण परिस्थिति उपस्थित कर दी है। दूसरी ओर 'सुखमय जीवन' में इन्हीं (आकस्मिक घटना और संयोग) के आधार पर एक मनोरंजक और हास्यपूर्ण परिस्थिति की सृष्टि हुई है—और कहानी के नायक 'सुखमय जीवन' नामक ग्रंथ के अनुभवहीन नवयुवक रचयिता बाबू जयदेवशरण वर्मा बी० ए० अपनी एल-एल० बी० परीक्षा का फल जोहते-जोहते घबराकर अपना समय काटने के लिए अपने एक मनकी मित्र के घर कालानगर जा रहे हैं कि रास्ते में साइकिल मे पंक्चर हो गया और हवा निकल गयी। सड़क के धूज-धक्कड़ में साइकिल खींचते हुए अचानक उनकी भेंट एक लड़की से हो गई जो उन्हें अपने घर लिवा ले गयी—पानी पिलाने, पंक्चर ठीक कराने और साइकिल में हवा भराने। रास्ते में लड़की को नायक का परिचय प्राप्त हुआ और फिर 'सुखमय जीवन' के लेखक का कमला (लड़की का नाम) के वृद्ध पिता के यहाँ बड़ा आदर-सत्कार हुआ। परन्तु अनुभवहीन लेखक का सारा पुस्तक ज्ञान उन अविवाहिता, शिक्षिता और सुन्दरी कमला के आकर्षण मे बह गया और उसने एकांत में कमला से अपना प्रेम भी प्रकट कर दिया। फिर एक मनोरंजक परिस्थिति उपस्थित हो जाती है और अन्त में कमला और कहानी के नायक का विवाह हो जाता है। इस कहानी में यथार्थ-चित्रण वास्तव में बड़े सुन्दर और स्वाभाविक हैं जिनसे यथार्थवादी वातावरण की सृष्टि होती है। उदाहरण के लिए कहानी का प्रारंभ देखिये, कितना सुन्दर है।

परीक्षा देने के पीछे और उसके फल निकलने के पहले दिन किस बुरी तरह बीतते हैं; यह उन्हीं को मालूम होगा जिन्हें गिनने का अनुभव हुआ है। सुबह उठते ही परीक्षा से आज तक कितने दिन गये यह गिनते हैं और फिर 'कहावती आठ हफ्ते' में कितने दिन घटते हैं यह गिनते हैं। कभी-कभी उन आठ हफ्तों पर कितने दिन चढ़ गये यह भी गिनना पड़ता है। खाने बैठे हैं और डाकिये की पैर की आहट आई, कलेजा मुँह को आया। मुहल्ले में तार का चपरासी आया कि हाथ-पाँव काँपने लगे। न जागते चैन न सोते—सुपने में भी यह दिखायी देता है कि परीक्षक

साहब एक आठ हफ्ते की लम्बी छूरी लेकर छाती पर बैठे हुए हैं इत्यादि।

१९१२ ई० में जयशङ्कर 'प्रसाद' ने एक दूसरे ढंग की कहानी का प्रारम्भ किया, जिसमें उनकी नाटकीय प्रतिभा और कवि-हृदय को अपना कौशल दिखलाने का उपयुक्त क्षेत्र मिला। 'रसिया बालम' नामक कहानी जो 'इन्दु' में अप्रैल १९१२ ई० में प्रकाशित हुई थी; गद्य में एक खण्ड काव्य के समान है और फ़ारसी के प्रेमाख्यानों के बहुत ही निकट है। इस प्रकार की कहानियों का कथानक प्रतिदिन के जीवन की मनोरंजक घटनाओं और प्रसङ्गों के आधार पर नहीं; वरन् लेखक की कल्पना-शक्ति से प्रसूत होता है। कहानियाँ प्राचीन आख्यानक गीतियों; प्रेमाख्यानक काव्यों, नाटकों और खण्डकाव्यों की गद्यात्मक वंशज जान पड़ती हैं। प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत 'प्रसाद' की कहानियाँ 'आकाशदीप' और 'पुरस्कार' इसी ढंग की कहानियाँ है। ऐतिहासिक कहानियाँ अधिकांश इसी ढंग की रचनाएँ होती हैं।

अस्तु, आधुनिक कहानियों का प्रारम्भ दो उद्गमों से होता है। एक ओर तो सामयिक और तत्कालीन जीवन के प्रतिदिन की आकस्मिक घटनाओं और करुणा, हास्यमय, विस्मययुक्त तथा अद्भुत परिस्थितियों के आधार पर यथार्थवादी वातावरण के आवरण में सुसज्जित नयी कहानियों की सृष्टि होने लगी; दूसरी ओर प्राचीन खण्ड-काव्यों, नाटकों और आख्यानक गीतियों तथा प्रबन्ध-काव्यों के आधार पर कल्पना-प्रसूत कथानक गद्य में नाटकीय कहानियों के साँचे में ढाले जाने लगे। प्रथम उद्गम से यथार्थवादी कहानियों का आरम्भ हुआ और द्वितीय उद्गम से आदर्शवादी और कवित्वपूर्ण कहानियों का।

आधुनिक कहानी का विकास

आधुनिक कहानियों के विकास के मुख्य तीन पक्ष है। इन तीनों पक्षों का विकास एक साथ ही हुआ और इन तीनों के पूर्ण विकास से ही आधुनिक कहानी का पूर्ण विकास सम्भव हुआ। ये तीनों पथ क्रमशः आत्मा, रूप और शैली हैं। कहानियों की आत्मा और रूप में अन्योन्याश्रित

सम्बन्ध है, इस कारण दोनों का विकास एक साथ ही दिखाना आवश्यक है।

(क) आत्मा और रूप

प्रारंभिक कहानियों में कथानक का क्रमिक विकास दैव-घटनाओं (Chances) और संयोगों (Coincidences) द्वारा हुआ करता था। ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी तथा विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रारम्भिक कहानियों में केवल आकस्मिक घटनाओं और संयोगों से ही मनोरंजक कथा-प्रधान कहानियों की सृष्टि हुआ करती थी। उदाहरण के लिए 'कौशिक' की प्रथम रचना 'रक्षाबन्धन' कहानी लीजिए। लड़की का भाई को रक्षाबन्धन बाँधने के लिए मचलना और अकस्मात् एक राही का भाई बन कर राखी बँधाना; घनश्याम का अपने मित्र के अनुरोध से अपनी भावी पत्नी को देखने के लिए अपने मित्र के साथ उसी लड़की के घर जाना और वहाँ उसका पहचाना जाना तथा भाई-बहन और पुत्र-माता का मिलन इत्यादि सभी बातें आकस्मिक घटनाओं तथा संयोगों के सहारे ही घटित हुई और इन सबके सामञ्जस्य से एक मनोरंजक कहानी की सृष्टि हुई। इसी प्रकार ज्वालादत्त शर्मा की 'तस्कर' कहानी में इन्हीं आकस्मिक घटनाओं और संयोगों द्वारा पाकेटमार मिट्ठू एक भला आदमी बन जाता है। वह दिन में विराजमोहन की जेब कतरता है और रात को जिस मकान में सेंध लगाता है संयोग से घर भी विराजमोहन का निकलता है, जहाँ उनकी स्त्री और बच्चे दाने-दाने को मुहताज हैं। विराजमोहन के बच्चे को देखकर मिट्ठू को अपने बच्चे की याद आ जाती है और करुणा से पिघल कर वह दिन का चुराया हुआ माल भी उसी घर में छोड़कर बाहर निकल आता है और भविष्य में एक भद्र मनुष्य का सा जीवन व्यतीत करता है।

आधुनिक कहानियों में विकास का प्रथम और प्रमुखतम सूत्र प्रेमचन्द की देन है। उन्होंने पहले-पहल कहानियों को बाह्य घटनाओं के जाल से छुड़ाकर उन्हें मानव-जीवन के अन्तःरहस्यों के उद्घाटन का साधन बनाया।

यह बात नहीं है कि उनकी कहानियों में आकस्मिक घटनाओं और संयोगो का उपयोग है ही नहीं, इसके विपरीत उनकी कहानियों में भी उनका उपयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। परन्तु जहाँ पहले कहानियों मे भीतर-बाहर सभी जगह इन्हीं आकस्मिक घटनाओं और संयोगों की प्रधानता थी, वहाँ प्रेमचन्द ने कथानक की बाह्य-रूप-रेखा के लिए आकस्मिक घट-नाओं और संयोगों का तो पूरा-पूरा उपयोग किया, परन्तु उसका अन्त: रूप रेखा का विकास मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण द्वारा ही किया। उदा-हरण के लिए उनकी प्रसिद्ध कहानी 'आत्माराम' लीजिये। कहानी की बाह्य रूप-रेखा तो इतनी ही है कि वेदों ग्राम का महादेव सुनार अपने तोते से अधिक स्नेह करता था और वही उसके जीवन का एकमात्र सहारा रहा। एक दिन लड़कों ने शरारत से उसके तोते का पिजड़ा खोल दिया। वह तोता उड़कर गाँव के बाहर एक पेड़ पर जा बैठा। महादेव भी पिंजड़ा लिये उसके पीछे-पीछे दौड़ता वहीं जा पहुँचा और उसे बुलाने लगा, परन्तु वह पिंजड़े में न आया। इतने में रात हो गयी और वह तोते के लिए उसी पेड़ के नीचे झपकियाँ लेने लगा। सहसा कोई खटका पा, जागकर उसने देखा कि कुछ आदमी कुछ दूर पर एक पेड़ के नीचे बैठे चिलम पीते हुए बातें कर रहे हैं। वह भी चिलम पीने के लिए उसी ओर बढ़ा! वे सब आदमी चोर थे और चोरी का माल बाँटने के लिए ही वहाँ आ बैठे थे। एक अजनबी को आते देख वे डर के मारे चोरी का माल छोड़कर भाग चले और महादेव को एक कलसा मोहरों से भरा मिला। फिर उसकी काया-पलट हो गयी और वह एक साधु-प्रकृति का मनुष्य हो गया। इस कहानी की बाह्य रूप-रेखा में आकस्मिक घटनाओं और संयोगों का पर्याप्त स्थान है। बाह्यरूप से इसमें 'कौशिक' के 'रक्षा-बन्धन' से कोई विशेषता नही, परन्तु यह बाह्य रूप इस कहानी का कोई महत्वपूर्ण अंग नहीं है। वास्तव में इसका महत्वपूर्ण अंश वह भाग है जहाँ लेखक तोते के प्रति महादेव की भावनाओं का वर्णन करता है, मोहरें मिल जाने पर उसकी मानसिक भावनाओं का चित्र खींचता है और उसकी काया-पलट का अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है। कहानी का प्राण तो

बच्चों को प्रसन्न देखकर वह अपना शेष समय समाप्त कर देगा। इसलिए वह कभी मिठाई वाला बनकर आता है, कभी बाँसुरिया वाला और कभी खिलौने वाला और बच्चों को कभी पैसा लेकर, कभी यों ही मुफ्त में मिठाई, खिलौने इत्यादि सामान देकर उन्हे प्रसन्न बदन उछलते-कूदते देखकर स्वयं प्रसन्न होता है। संसार मे कितने ही आदमियों के बच्चे मर जाते हैं, किन्तु वे मिठाईवाला बनकर इस प्रकार कार्य नहीं करते। यह तो एक असाधारण परिस्थिति है जैसी कि कहीं देखने मे नही आती। फिर भी यह बात असम्भव नही जान पड़ती और यही इन कहानियों मे सौंदर्य की सृष्टि करती है।

आधुनिक कहानियों के विकास का एक रूप वातावरण-प्रधान कहानियों में मिलता है। मानव-चरित्र के सूक्ष्म अन्तःरहस्यों का उद्घाटन इसका भी ध्येय है; परन्तु इसका काल-रूप चरित्र-प्रधान कहानियों से कहीं अधिक सुन्दर है। इसमें मानव-जीवन की किसी एक भावना अथवा अनुभूति मे अनुरंजित और अनुप्राणित एक कहानी की सृष्टि होती है, जिसमें कथानक, चरित्र और वातावरण सभी उसी एक भावना अथवा अनुभूति से ओत-प्रोत रहते हैं; वही एक भावना अथवा अनुभूति ही उस कहानी का प्राण है, श्वास-वायु है और ऐसा जान पड़ता है कि उस एक भावना को निकाल देने पर उस कहानी में कुछ भी शेष न बचेगा। उदाहरण के लिये सुदर्शन की एक बहुत सुन्दर कहानी 'हार की जीत' ले लीजिये। बाबा भारती के पास एक बहुत ही सुन्दर और सुडौल घोड़ा है, जिस पर खड्गसिंह डाकू की दृष्टि गड़ जाती है। उसने बाबा के उस घोड़े को माँगा, परन्तु बाबा ने साफ़ इन्कार कर दिया। एक दिन डाकू अपाहिज बनकर रास्ते में बैठा रहता है। जब बाबा घोड़े पर सवार उधर से गुजरते हैं, तो वह उनसे प्रार्थना करता है कि मैं अपाहिज हूँ, चल फिर नहीं सकता, परन्तु एक आवश्यक कार्य से एक जगह जाना है, इसलिए मुझे वहाँ पहुँचा दीजिये। करुण हृदय बाबा उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं और वह घोड़े पर बैठकर ऐंड़ लगा भाग जाता है और जाते समय वह कह जाता है कि मैं डाकू खड्गसिंह हूँ। इस पर बाबा उससे

प्रार्थना करते हैं कि यह बात वह किसी से भी न कहे। कारण पूछने पर उदार हृदय बाबा ने कहा :

लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया, तो वे किसी ग़रीब पर विश्वास न करेंगे।

यह बात डाकू के हृदय में तीर की भाँति चुभ जाती है और दूसरे ही दिन वह चुपचाप घोड़ा बाबा भारती के पास छोड़ जाता है। घोड़े को देखकर बाबाजी की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं, वे कह उठते हैं :

'अब कोई ग़रीबों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा।'

इस कहानी का केन्द्र-बिन्दु बाबा भारती की केवल एक उदार भावना है और इसी भावना को प्रकाश में लाने के लिए ही लेखक ने बाबा भारती, डाकू खड्गसिंह इत्यादि की सृष्टि करके इस कहानी की कल्पना की। ऐसा जान पड़ता है कि इस वातावरण में यही एक भावना ओत-प्रोत है। प्रस्तुत पुस्तक से संगृहीत 'पूस की रात' जाड़े का एक बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। हलकू, उसकी स्त्री मुन्नी और कुत्ता जबरा तो उस अनुभूति को प्रकाश में लाने के लिये निमित्त-मात्र हैं। वातावरण-प्रधान कहानियों की कला की तुलना चित्र-कला से की जा सकती है। यदि किसी चित्रकार को पूस की रात के जाड़े का चित्र प्रस्तुत करना हो, तो वह अपने चित्र में पेड़-पौधा, पशु-पक्षी, नर-नारी सब का चित्र खींचता है और उनकी भाव-भंगिमा से पूस की रात की ठंडक की ओर संकेत करता है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नर-नारी इत्यादि उस चित्र में केवल निमित्त-मात्र होते हैं। चित्रकार उनकी सहायता से एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है जिसमें ठंडक की भावना भरी रहती है। उसी प्रकार वातावरण-प्रधान कहानी में भी लेखक एक वातावरण की सृष्टि करता है, जिसमे कोई भावना अथवा अनुभूति ओत-प्रोत रहती है। वह चरित्रों की व्यवस्था करता है, घटना और प्रसंगों की कल्पना करता है, परन्तु वे सभी केवल एक भावना अथवा अनुभूति की ओर संकेत हैं, जो उस कहानी का प्राण है।

वातावरण-प्रधान कहानी की आत्मा तो चरित्र-प्रधान कहानी के

समान ही है, परन्तु इसका कला-रूप चरित्र-प्रधान कहानियों से भिन्न होता है और चित्रकला से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। कला की दृष्टि से वातावरण-प्रधान कहानियों का महत्व बहुत ही अधिक है, क्योंकि ये कहानियाँ अत्यन्त सुन्दर और प्रभावशाली होती हैं। 'प्रसाद' की कहानी 'आकाश दीप' वातावरण-प्रधान कहानी-कला का सर्वोत्तम उदाहरण है।

मानव-चरित्र और भावना के विश्लेषण और व्यंजन के पश्चात् आधुनिक कहानी के द्वितीय उत्थान में मानव-जीवन और इतिहास के चिरंतन अथवा सामयिक सत्यों की व्यंजना होने लगी। इस विकास का प्रारम्भ 'सुदर्शन' की 'कमल की बेटी', 'संसार की सबसे बड़ी कहानी' और 'एथेंस का सत्यार्थी' इत्यादि कहानियों से हुआ, जिनमें मानव-जीवन के कुछ महान् और चिरंतन सत्यों की व्यंजना पुराण-कथा के रूप में हुई। उदाहरण के लिए 'कमल की बेटी' कहानी ले लीजिए। भगवान् कृष्ण ने कमल के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे एक सुन्दरी तरुणी के रूप में परिवर्तित कर दिया। परन्तु अब प्रश्न उठा कि यह सौन्दर्य-प्रतिमा रहेगी कहाँ ? समुद्र अतल है, हिमालय सदा हिम से आच्छादित रहता है, वनों में सूनापन है, पुष्पवाटिकाओं में ग्रीष्म की जलती हुई लू चलती है और सरोवर में सेवार है। इस आदर्श सौंदर्य के लिए संसार में कोई आदर्श स्थल नहीं। भगवान् चिन्ताग्रस्त हो गये। अंत में उन्होंने देखा कि इस आदर्श सौंदर्य के लिए केवल कवि का हृदय ही उपयुक्त स्थान है। वहाँ हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों की अभ्रभेदी उत्तुंगता है, हिल्लोलमय महासागर की गम्भीरता है, अरण्य सूनापन और गिरिकन्दराओं का अन्धकार है। उन्होंने कमल की बेटी से कवि के हृदय में रहने को कहा, परन्तु यह सुनते ही वह काँप उठी। भगवान् ने उसको सांत्वना दी :

'तुम सुन्दरी हो तुम्हारा आसन कवि का हृदय है। यदि वहाँ हिम है, तो तुम सूरज बन कर उसे पिघला दो, यदि वहाँ समुद्र की गहराई है तो तुम मोती बन कर उसे चमका दो। यदि वहाँ एकांत है तो तुम सुमधुर संगीत आरम्भ कर दो, सन्नाटा टूट जायगा; यदि वहाँ अँधेरा है तो तुम दीपक बन जाओ, अँधेरा दूर हो जायगा।'

यह एक कलापूर्ण सृष्टि है जिसमें लेखक ने अपनी दिव्य दृष्टि से जीवन के एक चिरन्तन सत्य को प्रत्यक्ष कर कहानी के रूप में किया। इस प्रकार कहानियों का सबसे महत्वपूर्ण अंश इनका कला-रूप है, जो पुराण-कथा रूपक अथवा कथा से बहुत मिलता-जुलता है। लेखक ने कहानी पर सत्यता की एक अमिट छाप लगाने के लिए इसे पुराण-कथा का रूप दिया है। उदाहरण के लिए सुदर्शन का 'एथेंस का सत्यार्थी देखिये। इसमें एथेंस का सत्यार्थी देवकुलीश सत्य को असली रूप में—नंगा, बेपरदा, खुला—देखना चाहता है। इसके लिए वह ज्ञान और विवेक की देवी मिनर्वा की संगमरमर की मूर्ति के सामने घंटों बैठा प्रार्थना किया करता है। अन्त में उसकी साधना सफल हुई और देवी ने स्वयं उसे सत्य का असली रूप दिखाया। परन्तु इसका फल यह हुआ कि उसकी मानवी आँखें नंगे सत्य का दृश्य देखने में असमर्थ होने के कारण फूट गयीं। देवी ने उसे बताया कि सत्य पर्दो के अन्दर-ही देखा जा सकता है; जब उसका पर्दा उतार दिया जाता है तो मनुष्य वह देखता है, जो कभी नहीं देख सकता।

इस कहानीं में लेखक ने एक महान् सत्य की व्यंजना करने के लिए इस कहानी को रूप दिया है, वह पुराण-कथाओं का ही रूप है। इसमें अस्वाभाविक और अप्राकृतिक बातों का समावेश है। फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि इस सत्य की व्यंजना के लिए कोई दूसरा रूप इतना उपयुक्त भी नहीं। जीवन के चिरन्तन सत्य हम देवी और देवताओं के ही मुख से सुनने के आदी हो गये हैं। इसीलिए देवी-देवताओं का समावेश सत्यता की छाप के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

मानव-जीवन और इतिहास में चिरन्तन सत्य बहुत ही कम है। इसलिए पिछले लेखक कहानी के रूप में सामयिक सत्यों की व्यंजना करने लगे। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का 'काम-काज', अज्ञेय का 'रोज' इत्यादि कहानियों में सामायिक सत्य की स्पष्ट और सुन्दर व्यंजना हुई है।

सामयिक सत्य की व्यंजना में कहानियों के मुख्य तीन कला-रूप

मिलते हैं। पहला रूप पुराण-कथा का रूप है; जिसे हम ऊपर देख चुके हैं। सत्य की अमिट छाप लगाने और पाठकों को आकर्षित करने के लिए यह रूप बहुत उपयुक्त है। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि' में लेखक इस सामयिक सत्य की व्यंजना करना चाहता है कि आधुनिक युग कवि और कविता के लिए उपयुक्त नहीं और इस व्यंजना के लिए वह हिन्दी के महान् कवि तुलसी, सूर, बिहारी, देव और केशव से भारती के द्वार पर सत्याग्रह करवाता है कि भारत में फिर से कवि पैदा हों। देवी भारती कवियों का अनुरोध मानकर रामधन तेली और एक डिप्टी साहब मि० सिंह को कवित्व-शक्ति प्रदान करती हैं, और वे दोनों ही पागल करार देकर पागलखाने में बन्द कर दिये जाते हैं। अन्त में उन कवियों को ज्ञात हो जाता है कि आधुनिक युग भारत में कवियों के लिए उपयुक्त नहीं और वे धरना देना बन्द कर देते हैं। इस रूपक में उपर्युक्त सत्य की जितनी सुन्दर व्यंजना हुई है और उनकी अमिट छाप जो पाठकों के मस्तिष्क पर पड़ती है, वह और किसी रूप में सम्भव नहीं। इसी प्रकार 'उग्र' की कहानी 'देशभक्त' में पुराण-कथा के रूप में एक सुन्दर कहानी की सृष्टि हुई है। पुराण-कथा के रूप मे कहानियों की कलात्मकता और व्यंजना-शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

सत्य की व्यंजना का दूसरा रूप प्रभाववादी कहानियों में मिलता है जिसमें लेखक एक प्रभाव की सृष्टि करता है और उस प्रभाव से ही पाठकों के मन पर किसी सामयिक सत्य (जिसकी लेखक व्यंजना करना चाहता है) की अमिट छाप बैठ जाती है। उदाहरण के लिए 'कामकाज' कहानी लीजिये। लेखक ने तीन पृथक् कहानियों के रूप उपस्थित किए हैं और उन तीनों में ऐसा जान पड़ता है कि मानव अपने काम-काज के पीछे मानवता की बलि चढ़ा चुका है। लेखक ने प्रतिदिन के जीवन के असंख्य उदाहरणों से केवल तीन नमूने छाँट कर रख दिये हैं, जो चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि देखो कामकाज के पीछे मानवता की बलि चढ़ गई है, और उन कहानियों के पीछे कलाकार चुपचाप मानो कह रहा है, 'मैंने अपनी ओर से कुछ भी नहीं जोड़ा-घटाया है, वास्तविक चित्र पाठकों के

सामने है वे स्वयं देख सकते हैं।' प्रभाववादी ढंग का एक दूसरा और अधिक सुन्दर रूप 'अज्ञेय' की कहानी 'रोज़' में मिलता है। इसमें भी लेखक ने प्रतिदिन के असंख्य उदाहरणों से एक सुन्दर, प्रभावशाली और महत्वपूर्ण नमूना छाँट कर सामने रख दिया है कि साधारण मनुष्यों का जीवन कितना भाररूप और कितना ऊब पैदा करने वाला होता है, परन्तु इस कहानी में लेखक ने इस भारग्रस्त जीवन के प्रति कठोर उपेक्षा का भाव न दिखा कर सहानुभूति ही प्रकट की है। कहानी में रूप और शैली दोनों ही बहुत भावपूर्ण और उत्कृष्ट हैं। सत्य की व्यंजना का तीसरा रूप भगवतीचरण वर्मा की व्यंग्यात्मक कहानियों में मिलता है। उदाहरण के लिए उनकी कहानी 'प्रेजेन्ट्स' ले लीजिए, जिसमें आधुनिक सभ्य नारी के प्रेम और स्नेह के प्रति एक गम्भीर व्यंजना की गई है। उस सभ्य नारी की सम्पत्ति है उसके सैकड़ों प्रेमियों का एक-एक 'प्रेजेन्ट'। उन उपहारों के अतिरिक्त उसके नारीत्व का कुछ मूल्य नहीं। एक-एक प्रेमी पतिंगे की भाँति आते-जाते हैं और एक प्रेजेन्ट के रूप में अपने प्रेम का एक चिह्न छोड़ कर चले जाते हैं और वह सभ्य नारी किसी दूसरे प्रेमी का स्वागत करने को तैयार हो जाती है। आजकल की नारी-सभ्यता पर कितना करारा व्यंग है! इसी प्रकार उनकी 'प्रायश्चित' कहानी में पुराने पोंगा-पंथी पंडितों पर बड़ा सुन्दर व्यंग किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत वर्मा जी की कहानी 'मुग़लों ने सल्तनत बख्श दी' में लेखक ने एक ऐतिहासिक सत्य की व्यंजना बड़े ही सुन्दर व्यंग के रूप में की है। अँगरेज़ों ने भारत को तलवार के बल से नहीं जीता, वरन् व्यापारी के रूप में आकर अपनी नीति-कुशलता से एक साम्राज्य की स्थापना कर ली —इसी सत्य की व्यंजना कितने सुन्दर व्यंग के रूप में हुई है।

आधुनिक कहानियों का अन्तिम विकास कमलाकान्त वर्मा की 'खंड-हर', 'तकली', 'पगडंडी' इत्यादि कहानियों में मिलता है, जिसमें लेखक ने अभ्यंतरिक (Subjective) दृष्टिकोण उपस्थित किया है। कवि-हृदय लेखक ने एक खंडहर देखा और उसकी कल्पना के सामने वह चित्र उपस्थित हो गया जबकि उस खंडहर के स्थान पर एक सुन्दर अट्टालिका थी—ईंट,

पत्थर, चूना, और गारों से बनी हुई दृढ़ और विशाल। उसके सामने थी एक सड़क जिस पर म्युनिसिपैल्टी का लैम्प रात को प्रकाश फैलाता था। लेखक ने इस आकर्षक चित्र को एक कहानी के रूप में प्रकट किया जिसमें महल, प्रकाश, सड़क इत्यादि मानव के रूप में उपस्थित हो अपना स्नेह-प्यार, मान-अभिमान, कलह-विरोध इत्यादि कहानी सुनाते हैं। इस कल्पनापूर्ण कहानी का कलारूप आधुनिक कविता के संबोध गीत (Odes) के कलारूप से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। जिस प्रकार सुमित्रानन्दन पंत की कविता 'बादल' में बादल स्वयं अपनी प्रशंसा तथा गुण-दोष इत्यादि सुना डालता है, उसी प्रकार 'पगडंडी' भी एक कहानी के रूप में अपना प्रेम और कलह, अपना मान और अभिमान, अपना बचपन और यौवन सब का एक सुसंगत इतिहास कह सुनाती है। 'निराला' की 'यमुना के प्रति' कविता में जिस प्रकार कवि को यमुना की लहरों के संगीत में उस अतीत स्वर्ण-युग का संगीत सुनाई पड़ता है, जब नटनागर श्याम गोपियों के साथ रासलीला किया करते थे; उसी प्रकार 'खँडहर' कहानी से कमलाकान्त वर्मा को खँडहर देखकर उस अतीत-युग के चित्र की याद आ जाती है, जब वहाँ एक महल रहा होगा, अपने वैभव से परिपूर्ण। लेखक कहानी के रूप में उसी चित्र की व्यंजना करता है।

इस प्रकार की कहानियों में कवित्वपूर्ण कल्पना का अत्यधिक उपयोग होता है। लेखक खँडहर, तकली और पगडंडी इत्यादि को मानवबुद्धि और चेतना से संयुक्त कर देता है और वे अपना अतीत इतिहास सुनाते हैं। अपने जीवन में साथियों के साथ मान-अभिमान, रूठना-मनाना और प्रेमकलह इत्यादि सभी का वर्णन करते हैं। 'तकली' कहानी में तकली और पूनी के वार्तालाप से मानव सभ्यता का पूरा इतिहास सामने आ जाता है।

आधुनिक कहानी की आत्मा का विकास साधारण दैव-घटनाओं और संयोगों से प्रारम्भ कर मानव-चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण असाधारण परिस्थितियों में मनोविश्लेषण, जीवन के सामयिक और चिरंतन सत्यों की व्यंजना और कल्पना के रङ्गीन पंखों पर जीवन के उतार-चढ़ाव के चित्रों के चित्रण तक हुआ। परन्तु आधुनिक कहानी के विकास का

प्रधान अंग उसके कला-रूप का विकास है। आज का कहानी-लेखक कहानी की आत्मा से कहीं अधिक उसके कला रूप के सौन्दर्य और चित्ताकर्षक प्रभाव की ओर ध्यान देता है। आज की कहानी में कथानक और चरित्र का उतना महत्व नहीं रह गया है जितना भावनाओं की सूक्ष्म व्यंजना और प्रभाव का।

(ख) शैली

कहानी लिखने की सबसे प्रथम और प्रचलित शैली ऐतिहासिक शैली थी, जिसमें कहानी-लेखक इतिहासकार की तरह तटस्थ-सा होकर एक अन्य पुरुष की भाँति कहानी का वर्णन करता था। इस शैली में कोई विशेषता न थी। हाँ, कहीं-कहीं चमत्कारपूर्ण उक्तियों और अलंकृत भाषा के कारण साहित्यिकता की झलक अवश्य मिल जाया करती थी। इस शैली का प्रथम विकास राधिकारमण सिंह की प्रथम कहानी 'कानों में कँगना' में मिलती है, जहाँ लेखक ने बँगला कहानियों के प्रभाव से अपनी शैली में नाटक तत्व का सम्मिश्रण किया। जिस प्रकार एक सफल नाटककार नाटक के संघर्ष को प्रारम्भ में ही कुछ चरित्र के वार्तालाप में प्रकट कर देता है, उसी प्रकार 'कानों में कँगना' कहानी के लेखक ने प्रारम्भ में ही कहानी का मूलतत्व दे दिया है :

"यह क्या है ?"

"कानों में कंगना।"

इस संक्षिप्त वार्तालाप में ही पूरी कहानी की कुंजी है। लेखक ने इसी प्रकार यथार्थवादी संभाषणों और स्वाभाविक तथा प्रभावशाली वर्णनों से एक सुन्दर कहानी की सृष्टि की। बिश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' और जयशंकर प्रसाद ने इस शैली को और भी अधिक पूर्ण बनाया। उदाहरण के लिए 'कौशिक' की ताई' का प्रारम्भ देखिये :

'ताऊ जी, हमे लेलगाड़ी ला दोगे ? कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीवनदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाँहें फैलाकर कहा, "हाँ बेटा ला देंगे !"

यहाँ लेखक ने बिना यह बताये कि बाबू रामजीवनदास कौन हैं और

इस बालक का क्या परिचय है, कहानी का प्रारम्भ कर दिया। इसे उसने पीछे वर्णनात्मक ढंग से बतला दिया है। इस प्रकार के प्रारम्भ में एक नाटकीय सौन्दर्य अवश्य आ जाता है। 'प्रसाद' ने 'आकाश-दीप' का प्रारंभ भी वार्तालाप से किया है और यह वार्तालाप भी इस कौशल से कराया गया है कि वार्तालाप करने वालों का बहुत कुछ परिचय उनके संभाषण से ही मिल जाता है। वास्तव में यह कौशल नाटक लिखने वालों का है और 'प्रसाद' एक सफल नाटककार थे। इसी कारण उन्होंने कहानी-लेखन-शैली में संभाषणों का महत्व और नाटकीय सौन्दर्य की अद्भुत वृद्धि की।

संभाषण-कला और नाटकीय सौन्दर्य के सम्मिश्रण से ऐतिहासिक शैली का अपूर्व विकास हुआ, फिर मनोविज्ञान के सूत्रपात से यह शैली और भी परिष्कृत और पूर्ण हो गयी। कहानी के विविध चरित्रों के कार्यों और विचारों की पूर्ण अभिव्यंजना और यथार्थ चित्रण के लिए परिस्थिति, वातावरण इत्यादि का चित्रण भी आवश्यक हो गया। उदाहरण के लिए प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' में ईद का यथार्थ, सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन देखिये :

रमजान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभाव है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक़ है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है, ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही है। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर में सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं, उनमें तेल डालने के लिये तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असंभव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक; किसी ने वह भी नहीं, लेकिन ईदगाह जाने की खुशी

उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। उनके लिए तो ईद है। इत्यादि।

इस प्रकार स्वाभाविक वर्णनों और यथार्थवादी चित्रों से ऐतिहासिक शैली का पूर्ण विकास हुआ।

कहानियों की दूसरी प्रधान शैली चरित्र-शैली (Biographical Style) है, जिसमें कहानी का कोई पात्र सारी कहानी 'उत्तम पुरुष' (मैं) में कहता है। अस्तु, सुदर्शन-रचित 'अँधेरी दुनियाँ' में रजनी उत्तम पुरुष (मैं) में सारी कहानी कहती है। यथा :

मैं पंजाबिन हूँ, परन्तु मेरा नाम बंगालियों का सा है। मैंने अपने सिवा किसी दूसरी पंजाबिन लड़की का नाम रजनी नहीं सुना। इत्यादि और इसी प्रकार वह अपने विवाह, अपनी आँखों की चिकित्सा इत्यादि का विस्तृत वर्णन करके पूरी कहानी सुनाती है। इस प्रकार की शैली में अन्य शैलियों की अपेक्षा सत्य का आभास अधिक मिलता है। इस शैली में भी एक दोष है कि कहानी कहने वाले के अतिरिक्त अन्य चरित्रों का चित्रण स्वाभाविक रूप से नहीं हो पाता। कहने वाला अपने भाव-विचार तथा अपने अंतस्तल की छोटी से छोटी बातों की व्यंजना कर सकता है, परन्तु अन्य चरित्रों के सम्बन्ध में उसे यह सुविधा नहीं है। जिन कहानियों में एक ही प्रधान-चरित्र होता है और अन्य सभी चरित्र गौण होते हैं, उन कहानियों के लिये यह शैली अत्यन्त उपयुक्त है।

इस दोष के परिहार के लिए उपन्यासों की भांति कहानियों में भी सभी चरित्रों को अपनी-अपनी कहानी अपने-अपने शब्द में सुनानी पड़ती है। अस्तु, प्रेमचन्द की कहानी 'ब्रह्म का स्वांग' में पहले स्त्री अपनी कहानी सुनाती है, उसके पश्चात् पति महाशय अपने मन की बातें कहते हैं; फिर स्त्री अपनी गाथा सुनाती है, फिर पति महाशय का नम्बर आता है, अंत में स्त्री की बातों से कहानी का अंत होता है। यहाँ सभी बातें चरित्रों के ही स्पष्ट शब्दों द्वारा कही गई हैं और सभी पात्र-पात्रियों के अनुभव उन्हीं के मुख से कहलाये गये हैं। इस प्रकार इस कहानी में यथार्थता का पूर्ण आरोप है और चरित्र-चित्रण सुन्दरतम रूप में हुआ है। यह शैली

केवल इसलिए होती है कि जिसमें चरित्र का सुन्दर और प्रभावशाली चित्रण हो सके। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की 'दफ़्तरी' कहानी ले लीजिए। लेखक ने दफ़्तरी को गृहस्थी की अनेक जटिल परिस्थितियों में डाल कर उसके चरित्र की सुन्दर व्यंजना की है कि किस प्रकार वह सभी कठिनाइयाँ, दुःख और बाधाएँ समभाव से सहन करता है। यह एक योगी है, महावीर है। स्वयं लेखक अन्त में लिखता है :

गृहदाह में जलने वाले वीर रणक्षेत्र के वीरों से कम नहीं होते और वास्तव में दफ़्तरी साहस और सहनशीलता में किसी वीरों से कम नहीं है।

कहानियों मे स्थानाभाव के कारण चरित्रों के सभी अंगों और पक्षों का विशद् चित्रण सम्भव नहीं है, इसीलिए केवल एक विशेष पक्ष ही बड़ी सावधानी से चित्रित किया जाता है और अन्य सभी पक्ष अछूते रह जाते है। जिस एक पक्ष का चित्रण कहानी मे होता है, वह चरित्र के मुख्यतम गुण-विशेष का द्योतक रहता है और लेखक संक्षेप में ही उसका सुन्दरतम चित्र खींचता है। अस्तु, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' में लहनासिंह जमादार के अपूर्व स्वार्थ-त्याग और बलिदान का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। लहना एक बालिका को ताँगे के नीचे आने से बचाता है, दोनों का परिचय होता है और वे प्रायः मिल जाया करते हैं। बालिका बड़ी भोली-भाली है और लहना उससे प्रेम करने लगता है। कुछ समय पश्चात् बालिका का विवाह हो जाता है और लहना उसे भूल-सा जाता है। कई वर्षों के पश्चात् लड़ाई पर जाने के पहले लहना अपने सूबेदार के घर जाता है और जब उसे मालूम होता है कि सूबेदारनी और कोई नहीं उसकी वह भोली बालिका है जिसे वह प्यार करता था, तब उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। सूबेदारनी लहना को अपने पुत्र और पति की रक्षा का भार देती है। इस पवित्र उत्तरदायित्व को लहनासिंह अपने प्राण देकर भी पूरा करता है। सूबेदार हजारासिंह और रोग-ग्रस्त बोधासिंह के प्राणों की वह रक्षा करता है और स्वयं घायल होकर वज़ीरसिंह की गोद में प्राण दे देता है, परन्तु उसे इतना सन्तोष है, कि उसने अपना वचन पूरा किया है। कहानी की साधारण सफलता का

एकमात्र कारण लहनासिंह की अपूर्व आत्मकथा और बलिदान है। इसी प्रकार प्रेमचन्द की 'बूढ़ी काकी' की कहानी में बूढ़ी की लोभी और लालची प्रकृति का विषद चित्रण है। बुद्धिराम और उसकी स्त्री सारे गाँव को अच्छी वस्तुएँ खिलाते हैं, परन्तु बूढ़ी काकी को कोई पूछता ही नहीं। इतना ही नहीं, उसके माँगने पर उसका कई बार अपमान भी हुआ और दण्ड-स्वरूप उसे एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। बूढ़ी काकी रात को अपनी भूख मिटाने और अपनी हविस पूरी करने के लिए जूठी पत्तलों पर ही टूट पड़ती है। बुद्धिराम की पत्नी रूपा इस दृश्य को देखकर चकित रह जाती है और बूढ़ी काकी को भर पेट पूरियाँ और मिठाइयाँ खिलाती है। इस लोभ की प्रति-मूर्ति बूढ़ी काकी का इस कहानी में अपूर्व सौन्दर्य संयुक्त है।

इस प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियों के चरित्र प्रायः सभी विशेष प्रकार (Types) के अन्तर्गत आते हैं और आत्म-त्याग, वीरता, प्रेम, कायरता इत्यादि विशिष्ट गुणों अथवा अवगुणों के प्रतीक-स्वरूप होते हैं।

'दफ़्तरी' कहानी में नायक कोई व्यक्ति-विशेष नहीं है, वरन् गृहदाह में जलने वाले वीरों का प्रतिनिधि और प्रतीक है। सच बात तो यह है कि कहानी के सीमित स्थान में व्यक्तिगत चरित्रों का चित्रण सम्भव ही नहीं है, क्योंकि किसी चरित्र का व्यक्तीकरण करने के लिये लेखक को उस चरित्र के उन विशेष गुणों को दिखाना पड़ता है, जिससे वह अपने समुदाय के व्यक्तियों से पृथक् किया जा सके और उन विशेष गुणों को दिखाने के लिये उस चरित्र को कुछ विशेष परिस्थितियों और प्रसंगों में चित्रित करना आवश्यक है, जिसके लिए कहानी में पर्याप्त स्थान नहीं होता। इसलिए चरित्रों के व्यक्तीकरण के लिए अधिक से अधिक लेखक इतना ही कर सकता है कि कहीं-कहीं दो-चार अर्थ-गम्भीर वाक्य द्वारा चरित्र की कुछ विशेषताओं का दिग्दर्शन मात्र करा दे। उदाहरण के लिए 'प्रसाद' रचित 'भिखारिन' को लीजिये :

सहसा जैसे उजाला हो गया—एक धवल, दाँतों की श्रेणी अपना भोलापन बिखेर गयी, "कुछ हमको दे दो रानी माँ !"

निर्मला ने देखा, एक चौदह वर्ष की भिखारिनी भीख माँग रही है। केवल तीन लाइन का वर्णन है, परन्तु इन्हीं तीन लाइनों ने 'प्रसाद' की भिखारिन को अन्य भिखारिनों से पृथक् कर दिया है। 'धवल' दाँतों की श्रेणी और 'भोलापन के बिखेरने' से ही हम व्यक्ति-विशेष को पहचान लेते हैं। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से पता चलेगा कि यह 'धवल दाँतों की श्रेणी' और 'भोलापन बिखेरने' वाली भिखारिन का प्रतीक-स्वरूप ही है, उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है।

चरित्र प्रधान कहानियों में एक प्रकार की कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनमें मुख्य चरित्र में अचानक परिवर्तन हो जाता है। अस्तु 'कौशिक' की सर्वोत्तम कहानी 'ताई' में रामेश्वरी (ताई) के चरित्र में अचानक परिवर्तन होता है। वह अपने देवर के पुत्र मनोहर से घृणा करती है, क्यों कि उसी के स्नेह के पीछे उसके पति पुत्र-प्राप्ति के लिए कोई यत्न—तीर्थ-यात्रा, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास इत्यादि कुछ भी नहीं करते। बच्चों से उसे स्वाभाविक स्नेह है, पर मनोहर की सूरत से उसे घृणा है। एक दिन मनोहर पतंग पकड़ने के लिए मुंडेर पर दौड़ता है और अचानक पैर फिसल जाने के कारण गिरने लगता है। वह सहायता के लिए ताई को पुकारता है और ताई, यदि चाहती तो उसे बचा सकती थी, परन्तु उसने सहायता न की और बच्चा चीखता हुआ नीचे गिर पड़ा। मनोहर के नीचे गिरते ही ताई के हृदय को एक धक्का लगता है और वह बीमार हो जाती है। मनोहर जब अच्छा हो गया और रामेश्वरी के पास लाया गया तभी वह अच्छी हुई और उसके बाद से वह उसे बहुत प्यार करने लगी। चरित्र-प्रधान कहानियों में कहानी को प्रभावशाली बनाने के लिए इस प्रकार का अचानक परिवर्तन लेखकों का एक अत्यन्त उपयोगी कौशल है। कहानी के सीमित स्थल में चरित्र-चित्रण के लिए अनेक प्रसंगों और परिस्थितियों की आयोजना नहीं हो सकती, वरन् कुछ विशेष प्रभावशाली और महत्व-पूर्ण प्रसंग ही इनमें वर्णित हो सकते हैं और सबसे प्रभावशाली तथा महत्वपूर्ण प्रसंग वे ही हुआ करते हैं, जिनसे नायक के चरित्र पर सबसे अधिक प्रभाव पड़े, यहाँ तक कि चरित्र में परिवर्तन भी हो जाय।

प्रधान-चरित्र के अचानक चरित्र-परिवर्तन को लेकर हिन्दी में कुछ अत्यन्त उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी गई। विशेषतः प्रेमचंद तो इस कार्य में अत्यन्त प्रवीण थे। उनकी 'आत्माराम' कहानी में महादेव सुनार का तीन सौ मोहरें मिलने के पश्चात् अचानक परिवर्तन हो जाता है। वह एक ही रात में उदार-हृदय और दानी मनुष्य बन जाता है। 'दीक्षा' कहानी में वकील साहब अपनी प्रतिज्ञा भूलकर शराब पीना आरम्भ कर देते हैं और इसके इतने आदी हो जाते हैं कि एक रात शराब न मिलने पर साहब के चपरासी को घूस देकर साहब की थोड़ी शराब चुरवा मँगाते हैं, परन्तु सुबह साहब को चपरासी की चोरी और वकील साहब के घूस देने का पता चलता है, तब वह वकील साहब का बहुत अपमान करता है। इस अपमान से वकील साहब ने केवल शराब पीना ही नहीं छोड़ा, वरन् शराबखोरी बन्द करने के लिए वे एक सुधारक भी बन गये। चरित्र-परिवर्तन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'शंखनाद' नामक कहानी में मिलता है। गुमान कुश्ती लड़ने, कसरत करने; रामायण और भजन गाने तथा सिल्क का कुर्ता, साफ़ा बांध कर इधर-उधर घूमने में ही सारा समय बिताता है कोई उपयोगी कार्य नहीं करता है। उसके पिता, भाई, स्त्री सभी उसे समझा-बुझाकर, डरा-धमकाकर हार गये, लेकिन उसने किसी की न मानी, परन्तु एक घटना से उसमें एकदम परिवर्तन हो गया। एक दिन एक फेरी वाला बच्चों के लिए अच्छी-अच्छी वस्तुएँ बेचने आया। गुमान की भाभियों ने अपने-अपने बच्चों के लिए अच्छी-अच्छी चीजें खरीद दीं, परन्तु गुमान के पुत्र के लिए खरीदने को उसकी स्त्री के पास पैसा ही न था। बच्चा निराश होकर रोने लगा। उसका यह रोना गुमान के कानों में शंखनाद के समान जान पड़ा और वह उसी दिन से परिवर्तित हो गया और घर का काम-काज करने लगा।

चरित्र-प्रधान कहानियों का एक सुन्दर और प्रभावशाली रूप उन मनोवैज्ञानिक कहानियों में मिलता है जहाँ, किसी असाधारण परिस्थिति विशेष में, किसी चरित्र का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होता है। प्रस्तुत पुस्तक में 'जाह्नवी', 'मिठाईवाला' और 'अपराध' कहानियाँ इसी श्रेणी की है।

इन कहानियों में कथा का भाग बहुत कम होता है क्योंकि इनमें उन घट-नाओं और प्रसंगों का केवल संकेत मात्र रहता है जिनके द्वारा प्रधान चरित्र के आदर्श और प्रतिनिधि गुण और अवगुण प्रकाश में लाये जाते हैं अथवा जिनके द्वारा चरित्र में अचानक परिवर्तन हो जाता है। कहानी-लेखक का मुख्य उद्देश्य उन आदर्श गुणों अथवा अवगुणों का मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करना होता है अथवा परिवर्तित चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना होता है। 'मिठाईवाला' कहानी में लेखक ने यह नही बतलाया कि मिठाईवाला कौन था? अपने लड़कों की मृत्यु के पहिले वह क्या करता था। उसके लड़कों का मृत्यु कैसे हुई? इत्यादि। इन बातों का संकेत मात्र कहानी मे मिलता है परन्तु उसके पुत्रों की मृत्यु के पश्चात् उसके परिवर्तित चित्र का सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ी सुन्दरता से कहानी में मिलता है। लेखक कार्यों और प्रसंगों की कम से कम सहा-यता लेता है। उसका एकमात्र उद्देश्य चरित्र-चित्रण है परन्तु इनमे एक कठिनाई यह पड़ती है कि कार्य और प्रसंग के अभाव में, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दुरूहता में कहानी नीरस हो जाती है और कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि लेखक कहानी लिखने नहीं, किसी मनोवैज्ञानिक समस्या को सुलझाने बैठा है। परन्तु जहाँ नीरसता नहीं है, जहाँ मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ रस, कार्य, घटनानिर्देश का मणिकांचन योग हुआ है, वहाँ मनोवैज्ञानिक चरित्र-प्रधान कहानियाँ उच्चतम कोटि की कहानियाँ बन पड़ीं हैं।

(२) घटना-प्रधान कहानी

घटना-प्रधान कहानी कहानियों की सबसे साधारण श्रेणी हैं। इनमें चरित्र-चित्रण पर प्रधान रूप से जोर नहीं दिया जाता, वरन् उन उलझनों पर विशेष जोर दिया जाता है, जो विविध-चरित्रों के विविध परिस्थितियों में पड़ने के कारण पैदा हो जाती हैं। संक्षेप में चरित्रों और परिस्थितियो के सम्बन्ध पर जोर दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'कौशिक' की कहानी 'पावन-पतित' लीजिए। राजीवलोचन को, जो वास्तव मे एक

वैश्या का पुत्र था और रास्ते में पड़ा मिला था, एक पुत्रहीन धनवान मनुष्य ने बड़े ही स्नेह और आदर से पुत्र की भाँति पाला था। मरते समय उस मनुष्य ने राजीवलोचन को बता दिया कि वह उसका पुत्र नहीं है, वरन् सड़क पर पड़ा मिला था। राजीवलोचन के हृदय में बड़ी ठेस लगती है और वह एक तावीज के सहारे अपनी माँ को खोजने निकल पड़ता है। अन्त में संयोग से उसे अपनी माँ के दर्शन होते हैं जो एक वेश्या है। वह जीवन से निराश होकर अन्तर्ध्यान हो जाता है—शायद आत्महत्या करने या सन्यास लेने के लिए। यहाँ लेखक ने एक चरित्र लेकर उसे विविध परिस्थितियों में डालकर एक मज़ेदार कहानी की सृष्टि की। 'कौशिक' की अधिकांश कहानियाँ इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। ज्वालादत्त शर्मा और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी भी घटना-प्रधान कहानी लिखने में सिद्धहस्त हैं।

कला की दृष्टि से घटना-प्रधान कहानी चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान और प्रभाव-प्रधान कहानियों से निम्नतर श्रेणी की कहानी होती है। इसमें दैव-घटना और संयोग का विशेष हाथ रहता है। इससे पाठकों के हृदय में वर्तमान कथा-कहानी-सम्बन्धी कौतूहल की शांति तो अवश्य हो जाती है; परन्तु कला और चरित्र का सौन्दर्य उसमें बहुत कम मिलता है।

(३) कार्य-प्रधान कहानी

कार्य-प्रधान कहानियों में सबसे अधिक जोर कार्य पर दिया जाता है। गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानी, बनारस के 'उपन्यास बहार' आफ़िस से प्रकाशित साहसिक (Adventure), रहस्यपूर्ण (Mystery), अद्भुत (Fantastic) तथा वैज्ञानिक कहानियाँ इस श्रेणी की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। जी० पी० श्रीवास्तव की अतिनाटकीय प्रसंग-पूर्ण हास्यमय कहानियाँ भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। इन कहानियों में चरित्र को कोई महत्व नहीं दिया जाता। उसके कार्य ही अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिए जासूसी कहानियों को ले लीजिये। जासूसों के चरित्र से हमें कोई मतलब नहीं, हम तो उनके विस्मयकारी चतुराइयों पर ही मुग्ध होते हैं!

संगीत की सफलता निहित है। चाहे वह 'चना जोर गरम प्यारे मैं लाया मजेदार' गाए अथवा 'ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे' वास्तविक वस्तु उसका प्रभाव है ठीक इसी प्रकार प्रभाव-प्रधान कहानी में उसका प्रभाव ही सब कुछ है, चरित्र, कथानक इत्यादि का कोई महत्व नहीं। उदाहरण के लिए चंद्रगुप्त विद्यालंकार की कहानी 'क ख ग' लीजिये। इसमें लेखक ने तीन स्वतंत्र कहानियाँ 'हत्या', 'शहादत' और 'त्याग' दी हैं। इसमें कहानियों के चरित्र और घटना का विशेष महत्व नहीं है। वास्तविक महत्वपूर्ण अंश उसका प्रभाव-विशेष है, जो पढ़ने वालों के मस्तिष्क पर एक अमिट छाप लगाता है कि संसार स्वार्थ और सहानुभूति, हत्या और त्याग का रंगस्थल है। यहाँ एक ओर थोड़े से रुपये के लिए भाई-भाई की हत्या करता है तो दूसरी ओर स्वामि-भक्त कुत्ता अपने स्वामी के विछोह में अपने प्राण तक दे देता है। इसी प्रकार मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि' में न तो तुलसी, सूर और केशव का भारती के द्वार पर धरना देना और न भारती का वरदान देना ही मुख्य अंश है, वरन् कहानी का यह प्रभाव कि आधुनिक युग कविता के लिए उपयुक्त नहीं है। इस कहानी में यही प्रधान वस्तु है।

प्रभाव-प्रधान कहानियों की कला का सबसे महत्वपूर्ण अंश उन कहानियों का कला-रूप है। हिन्दी प्रभाव-प्रधान कहानियाँ मुख्य तीन रूपों में लिखी गई हैं, जिनका वर्णन कहानियों के विकास में हो चुका है। प्रभाव-प्रधान कहानी हिन्दी में अभी कुछ ही वर्षों से लिखी जाने लगी हैं, इसीलिए इस प्रकार की कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम हैं।

(व) विविध कहानियाँ

इन तीन प्रकार की मुख्य कहानियों के अतिरिक्त हास्यपूर्ण, ऐतिहासिक, प्राकृतवादी और प्रतीकवादी कहानियों का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है।

हास्यपूर्ण कहानियाँ हिन्दी में केवल जी० पी० श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानन्द और बद्रीनाथ भट्ट ने लिखीं। जी० पी० श्रीवास्तव की हास्यपूर्ण कहानियों का एक संग्रह 'लम्बी दाढ़ी' के नाम से प्रकाशित हुआ, परन्तु

इन कहानियों मे उच्चकोटि का हास्य नहीं है। बद्रीनाथ भट्ट, अन्नपूर्णानन्द और 'वेढव' इत्यादि कुछ थोड़े से लेखकों ने भी हास्यपूर्ण कहानियाँ लिखीं, परन्तु उनके हास्य में कोई विशेषता नहीं मिलती। प्रेमचन्द ने मोटेराम शास्त्री को नायक बनाकर मजेदार कहानियाँ लिखीं जिनमें उच्चकोटि का हास्य मिलता है। मोटेराम और उनके मित्र चिन्तामणि प्राचीनकाल के विदूषकों की भाँति बड़े ही पेटू और हंसमुख ब्राह्मण हैं। मोटेराम का सत्याग्रह तो अपूर्व है और हास्यमयी कहानियों में उसका स्थान बहुत ही ऊँचा है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने १९१० ई० के आस-पास कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ 'सरस्वती' में लिखीं, परन्तु बाद में उन्होंने उपन्यासों की ओर विशेष ध्यान दिया और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखना बन्द कर दिया। 'प्रसाद' ने भी कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं जिनमे 'ममता' कहानी अत्यन्त सुन्दर और सराहनीय रचना है। प्रेमचन्द ने 'वज्रपात' और 'सारंधा', चतुरसेन शास्त्री ने 'भिक्षुराज', जिसमें अशोक महान् के पुत्र और पुत्री राजकुमार महेन्द्र और आर्या संघमित्रा का बोध-गया से वटवृक्ष लेकर लंका-यात्रा और लंका में बौद्ध धर्म के प्रचार का वर्णन है, सुदर्शन ने 'न्यायमन्त्री' जिसमें अशोक के न्यायमन्त्री शिशुपाल के न्याय का वर्णन है, आदि ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं। परन्तु सब कुछ लिखने के पश्चात् यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ऐतिहासिक उपन्यासों की भाँति ऐतिहासिक कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम हैं।

बेचन शर्मा, 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री आदि कतिपय कहानी-लेखकों ने कुछ कहानियाँ प्राकृतवादी (Naturalistic) ढंग की लिखी। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य समाज का सुधार करना अवश्य था, परन्तु उसमें मानवता की लज्जाप्रद और घृणास्पद बातें कलात्मक सौन्दर्य के साथ चित्रित की गई हैं। उनके सुन्दर और सत्य होने में कोई सन्देह नही—चरित्र-चित्रण और शैली की दृष्टि से वे बड़ी शक्तिशाली और सुन्दर रचनाएँ है, परन्तु साथ ही वे अमंगलकारी और कुरुचिपूर्ण है। उनके कथानक साधारणतः वेश्याओं, खानगियों, विधवाश्रमों, सड़क पर भीख

मांगने वालों और गुण्डों के समाज से लिये गये हैं। उनका चरित्र-चित्रण यथार्थ और सजीव है, कला उनकी निर्दोष है, परन्तु जनता की रुचि और मंगल-भावना के लिए यह अच्छा होता कि ये समाज-सुधारक अपनी अपूर्व प्रतिभा का उपयोग किसी भिन्न रीति से करते।

प्रतीकवादी नाटकों और उपन्यासों की भाँति प्रतीकवादी कहानियाँ भी लिखी गयीं, परन्तु उनकी संख्या हिन्दी में बहुत ही कम हैं। राय कृष्णदास की कहानी 'कला और कृत्रिमता' जिसमें वास्तविक और कृत्रिम कला का अन्तर बड़े ही कलापूर्ण ढंग से चित्रित है, इसी प्रकार की एक सफल रचना है। 'प्रसाद' की कहानी 'कला' भी बड़ी सुन्दर रचना है। स्कूल में यों तो सभी कला से प्रेम करते हैं, परन्तु रूपनाथ (सौन्दर्य के प्रतीक) और रसदेव (रस के प्रतीक) कला की ओर सबसे अधिक आकर्षित हुए और कला भी उनसे कभी-कभी बातें कर लेती है। रूपनाथ सुन्दर, परन्तु बहुत ही कठोर हृदय वाला था। वह कला के बाह्य सौंदर्य पर मुग्ध था और अपनी चित्रकला में उसी का चित्रण किया करता था। दूसरी ओर रसदेव को लोग पागल समझते थे। वह कला के अंतः सौंदर्य का उपासक था और उसके गीतों में उसके अंतःसौंदर्य की व्यंजना मिलती थी। रूपनाथ को अपनी चित्र-कला से द्रव्य और यश दोनों की प्राप्ति होती थी। परन्तु वेचारे रसदेव को कुछ भी नहीं मिलता, मिलता है कला का आदर और सम्मान। लेखक ने अन्तःसौंदर्य और कवित्व का महत्व बड़े ही सुन्दर और कलापूर्ण ढंग से व्यंजित किया है।

सामयिक कहानी

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रेमचन्द-सुदर्शन-'प्रसाद'-शैली की कहानियों के अतिरिक्त कहानियों की एक धारा आत्मपरक विश्लेषण की रही है। जैनेन्द्र, 'अज्ञेय', इलाचन्द्र जोशी आदि उसके प्रमुख उन्नायकों में रहे हैं। यह धारा पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों एवं विद्वानों, विशेषतः फ्रॉयड, ऐडलर और युंग से प्रभावित रही है। प्रथम महायुद्ध के बाद की जीवन की विषम परिस्थितियों के फलस्वरूप विकार-

ग्रस्त और पंगु एवं गतिहीन पात्रों का चित्रण होना और लेखकों द्वारा पात्रों का मन टटोला जाना स्वाभाविक था। इस धारा के लेखकों ने मनुष्य की असंख्य अपूर्ण इच्छाओं और कामनाओं का चित्रण किया। अतृप्त और दमित इच्छाओं द्वारा मनुष्य का जीवन संचालित होता ही रहता है। उसके मन में अनेक प्रकार की ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, मनुष्य अन्तर्मुखी हो जाता है और उसकी कार्य-प्रणाली में विचित्रता आ जाती है। उपर्युक्त तीन विद्वानों के अतिरिक्त ज्याँ-पाल सार्त्र, कामू, काफ़्का आदि ने भी इस धारा को प्रभावित किया। फलस्वरूप हिन्दी कहानियों में आत्मपरक विश्लेषण का सूत्रपात हुआ। कहानी साहित्य स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ा और कहानी का क्षेत्र मनुष्य का कर्म-क्षेत्र न होकर अन्तर्जगत और मानस हो गया। कहानीकारों ने मनुष्य के अवचेतन में भरी हुई ग्रन्थियों, कुरूपताओं, हिंसा, द्वेष, ईर्षा, वासना आदि के आधार पर मानव-मन के रहस्य की गुत्थियाँ सुलझाने का प्रयत्न किया, इस आत्मपरक विश्लेषण की धारा ने शिल्प-सम्बन्धी नए-नए प्रयोग किए और सांकेतिकता तथा प्रतीकों के प्रयोग एवं बौद्धिकता के आग्रह से कहानी जटिल से जटिलतर होती गई। यहाँ तक कि अनेक सामयिक कहानी-लेखक, जैसे, निर्मल वर्मा ('दहलीज़', 'कुत्ते की मौत'), नरेश मेहता ('चाँदनी', 'अनबीता व्यतीत'), मोहन राकेश ('कई एक अकेले', 'पाँचवें माले का फ़्लैट') राजेन्द्र यादव ('शहर के बीच एक वृक्ष', 'किनारे से किनारे तक'), कमलेश्वर ('तलास', 'पीला गुलाब'), अमरकान्त ('खलनायक'), श्रीकांत वर्मा ('टेरसो'), सुरेश सिनहा ('पानी की मीनारें', 'नीली-धुंध के आरपार', 'कई कुहरे') आदि भी इस आत्मपरक विश्लेषण की धारा से एकदम अलग नहीं हैं—यद्यपि इन लेखकों में सामाजिक संचेतना, यथार्थ की पकड़, व्यक्ति की मर्यादा, व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, सामयिक भावबोध, परिवेश की यथार्थता और अपनी संगति प्रतिबद्धता की भावना पिछले खेवे के कहानीकारों से अधिक गहरी और तीव्र है।

स्वतंत्रता की प्राप्ति (१९४७ ई०) द्वितीय महायुद्ध (१९३९-१९४५) के बाद की कहानियों में अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिवेश के कारण

नहीं, भीतर से भी सक्रिय है।

आज की कविता, कहानी और उपन्यास के सन्दर्भ में आधुनिकता' भी एक बहुचर्चित विषय बन गया है। 'आधुनिक' या 'आधुनिकता' सापेक्षिक शब्द हैं और इतिहास में 'आधुनिकता' समय-समय पर आती रहती है। लेकिन आज जीवन-क्रम इतनी तेज़ी से बदल रहा है कि 'आधुनिकता' की पकड़ आवश्यक समझी जाने लगी है। द्वितीय महायुद्ध के बाद विज्ञान और टेकनोलॉजी ने इतनी तीव्र प्रगति की है कि उससे संसार के जीवन का पैटर्न तेज़ी के साथ बदलता जा रहा है। पुराने मूल्य खण्डित हो गए हैं, विघटित हो गए हैं। उनके स्थान पर नए मूल्य बन नहीं पा रहे। विज्ञान की प्रगति से मनुष्य को सुख-सुविधाएँ ही प्राप्त नहीं हो रहीं, वरन् उसका पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी ऐसे अनेक परिवर्तन हो रहे हैं जिनके साथ उसका मानसिक सामंजस्य स्थापित नहीं हो पा रहा और जिसके फलस्वरूप आज का मनुष्य 'Split personality' और 'Frustration' का साक्षात् उदाहरण है। ऐसी परिस्थिति में आधुनिकता क्या है' पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। कुछ लोग पश्चिमी जीवन और वस्तुओं, आचार-विचार और नैतिकता का अनुकरण करने को ही 'आधुनिकता' मान बैठे हैं। नग्न सेक्स, डान्स, रेस्त्रां, शराब, सिगरेट, विवाहिता पत्नी को छोड़कर प्रेमिकाओं के साथ रहना, पति-पत्नी का कलह, तलाक़ पारिवारिक विषमताओं और कुठाओं आदि को वे 'आधुनिकता' समझते हैं। किन्तु 'आधुनिकता' के प्रति यह ग़लत दृष्टिकोण है। आधुनिकता बाह्य साधनों और उपकरणों तक सीमित न रह कर निरन्तर प्रवाहमान जीवन को समझने का सतत प्रयास है। वह ऐसा जीवन-मूल्य है जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के प्रकाश में मानव, सामान्य मानव, को स्थापित करता है। भारतीय संस्कृति में भी ऐसे तत्त्व विद्यमान है जो 'आधुनिकता' की इस कसौटी पर खरे उतर सकते हैं।

जहाँ तक शिल्प से सम्बन्ध है आज का कहानीकार छोटे-छोटे जीवन खण्ड लेकर चलता है और स्थानीय आचार-विचार, रीति-नीति, भाषा,

विशिष्ट शब्दावली, जीवन की रंगीनी आदि का समावेश कर कलात्मक वैशिष्ट्य उत्पन्न करता है। कुछ कहानियों में लोकगाथात्मकता प्रमुख होती हुई दिखाई देती है और वे 'एनेक्डोटल' हो जाती हैं। जीवन की कुरूपता और विघटनकारी शक्तियों के फलस्वरूप उत्पन्न घुटन, कुंठा, निराशा, सेक्स, कटुता, भग्न, आकांक्षाएँ आदि आज की कहानियों के प्रमुख विषय बने हुए हैं। किन्तु कहानी अब भी कहानी है। उसमें, संसार की अन्य कहानियों की भाँति, कथानक का ह्रास पाया जाता है। किन्तु उसकी क्षति-पूर्ति पात्र के चरित्र, उसके मन को कुरेदने और उसके व्यक्तित्व को उभारने में हो जाती है। कुछ कहानियाँ ऐसी भी है जिन्हें रेखाचित्र, संस्मरण, निबन्ध और रिपोतार्ज के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वे 'स्केचेज़' जैसी मालूम होती हैं। पश्चिम में तो कहानी को 'स्टोरी पौयजन' कहा जाने लगा है। आज की हिन्दी कहानी में कथानक की स्थूलता के स्थान पर मन की सूक्ष्मता, मनुष्य का अपने मन से संघर्ष, वातावरण और सामाजिक परिप्रेक्ष्य की प्रधानता हो चली है। घटना और पात्रों की अवतारणा किसी वैचारिक विशेषता या 'मूड' या जीवन का कोई विशेष सूक्ष्म पक्ष उभारने की दृष्टि से की जाती है। उसमें नई आस्थाएँ और भाव-भूमियाँ रहती हैं। भोगा हुआ क्षण और अनुभूति की प्रामाणिकता उसका शिल्पगत लक्ष्य है। उसमें कथ्य प्रमुख होता है, किन्तु उसे चुनने की दृष्टि नई होती है। उसकी भाषा, उसके कथ्य और साक्षात् बोध के अनुरूप होती है। इन समान रूप से पाई जाने वाली शिल्पगत प्रमुख विशेषताओं के रहते हुए भी, यह कहना ही उचित होगा कि आज की कहानी का कोई कटा-छँटा, चुस्त-दुरुस्त मान नहीं है। कथात्मक, पात्र और कथोपकथन तो आज की अनेक कहानियों में रहते ही नहीं। आत्म-विश्लेषण अधिक रहता है, अनुभूति की प्रधानता रहती है। आत्म-संघर्ष और अनुभूति की ठीक-ठीक अभिव्यक्ति ही उसके शिल्प की सार्थकता है। आज के विघटित होते हुए जीवन की परिस्थितियों को लेकर कहानीकार आत्म-विश्लेषण और मानसिक द्वन्द्व एवं जीवन-संघर्ष की अभिव्यक्ति कभी समष्टिगत चिंतन के आधार पर करता है, कभी व्यक्तिगत चिंतन के आधार पर।

जाता है, वह हीरोजी को एक प्याला चाय अवश्य पिलाता है। उस दिन जब हम लोग चाय पीने पहुँचे, तो हीरोजी एक कोने में आँख बन्द किये हुए बैठे कुछ सोच रहे थे। हम लोगों में बातें शुरू हो गई और हरिजन आन्दोलन से घूमते-फिरते बात आ पहुँची दानवराज बलि पर। पण्डित गोवर्द्धन शास्त्री ने आमलेट का टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा—'भाई, यह तो कलियुग है। न किसी में दीन है, न ईमान। कौड़ी-कौड़ी पर लोग बेईमानी करने लग गये हैं, अरे अब तो लिख कर भी लोग मुकर जाते हैं। एक युग था, जब दानव तक अपना वचन निभाते थे। सुरों और नरों की तो बात छोड़ दीजिये। दानवराज बलि ने वचनबद्ध होकर सारी पृथ्वी दान कर दी थी। पृथ्वी ही काहे की, स्वयं अपने को भी दान कर दिया था।'

हीरोजी चौंक उठे। खाँस कर उन्होंने कहा—'क्या बात है? जरा फिर से तो कहना!'

सब लोग हीरोजी की ओर घूम पड़े। कोई नई बात सुनने को मिलेगी, इस आशा से मनोहर ने शास्त्री जी के शब्दों को दुहराने का कष्ट उठाया—'हीरोजी! ये गोवर्द्धन शास्त्री जी है, सो कह रहे है कि कलियुग में धर्म-कर्म सब लोप हो गया। त्रेता में तो दैत्यराज बलि तक ने अपना सब कुछ केवल वचनबद्ध होकर दान कर दिया था।'

हीरोजी हँस पड़े—'तो यह गोवर्द्धन शास्त्री कहने वाले हुए और तुम लोग सुनने वाले, ठीक ही है। लेकिन हमसे सुनो, यह तो कर रहे है त्रेता की बात, अरे तब तो अकेले बलि ने ऐसा कर दिया था, लेकिन मैं कहता हूँ कलियुग की बात। कलियुग में तो एक आदमी की कही हुई बात को उसकी सात-आठ पीढी तक निभाती गयी और यद्यपि वह पीढ़ी स्वयं नष्ट हो गई, लेकिन उसने अपना वचन नहीं तोड़ा।'

हम लोग आश्चर्य में आ गये। हीरोजी की बात समझ में नहीं आयी, पूछना पड़ा—'हीरोजी, कलियुग में किसने इस प्रकार अपने वचन का पालन किया?'

'लौंडे हो न ?' हीरोजी ने मुँह बनाते हुये कहा—'जानते हो मुगलों की सल्तनत कैसे गई ?'

'हाँ, अंग्रेजों ने उनसे छीन ली।'

'तभी तो कहता हूँ कि तुम सब लौंडे हो। स्कूली किताबों को रट-रट बन गये पढ़े-लिखे आदमी। अरे मुग़लों ने अपनी सल्तनत अंग्रेजों को बख्श दी।'

हीरोजी ने यह कौन-सा नया इतिहास बनाया। आँखें कुछ अधिक खुल गईं। कान खड़े हो गये। मैंने कहा—'सो कैसे ?'

'अच्छा तो फिर सुनो !' हीरोजी ने आरम्भ किया—

'जानते हो, शाहंशाह शाहजहाँ की लड़की शाहजादी रोशनआरा एक दफ़े बीमार पड़ी थी, और उसे एक अंगरेज डाक्टर ने अच्छा किया था। उस डाक्टर को शाहंशाह शाहजहाँ ने हिन्दुस्तान में तिजारत करने के लिये कलकत्ते में कोठी बनाने की इजाज़त दे दी थी।'

'हाँ, यह तो हम लोगों ने पढ़ा है।'

'लेकिन असल बात यह है कि शाहज़ादी रोशनआरा—वही शाहंशाह शाहजहाँ की लड़की एक दफ़े जल गई : अधिक नहीं जली थी। अरे हाथ में थोड़ा-सा जल गई थी, लेकिन जल तो गई थी और थी शाहजादी। बड़े-बड़े हकीम और वैद्य बुलाये गये। इलाज किया गया, लेकिन शाहज़ादी को कोई अच्छा न कर सका—न कर सका। और शाहजादी को भला अच्छा कौन कर सकता था ? वह शाहज़ादी थी न ! सब लोग लगाते थे, लेप, और लेप लगाने से होती थी जलन, और तुरन्त शाहज़ादी धुलवा डालती उस लेप को। भला शाहज़ादी को रोकने वाला कौन था ? अब शाहंशाह सलामत को फ़िक्र हुई। लेकिन शाहज़ादी अच्छी हों तो कैसे ? वहाँ तो दवा असर करने ही न पाती थी।

'उन्हीं दिनों एक अंगरेज घूमता-घामता दिल्ली आया। दुनिया देखे हुये, घाट-घाट का पानी पिये हुये, पूरा चालाक और मक्कार ! उसको शाहज़ादी की बीमारी की खबर लग गयी। नौकरों से घूस देकर उसने पूरा हाल दरियाफ़्त किया। उसे मालूम हो गया कि शाहज़ादी जलन की

वजह से दवा धुलवा डाला करती है। सीधे शाहंशाह सलामत के पास पहुँचा, कहा कि डाक्टर हूँ। शाहज़ादी का इलाज उसने अपने हाथ में ले लिया। उसने शाहज़ादी के हाथ में एक दवा लगायी। उस दवा से जलन होना तो दूर रहा, उल्टे जले हुये हाथ में ठंडक पहुँची। अब भला शाहज़ादी उस दवा को क्यों धुलवाती। हाथ अच्छा हो गया। जानते हो वह क्या थी ?' हम लोगों की ओर भेद-भरी दृष्टि डालते हुये हीरोजी ने पूछा।

'भाई हम दवा क्या जानें ?' कृष्णानन्द ने कहा।

'तभी तो कहते हैं कि इतना पढ़-लिखकर तुम्हें तमीज न आयी। अरे वह दवा थी वेसलीन—वही वेसलीन जिसका आज घर-घर में प्रचार है।'

'वेसलीन ! लेकिन वेसलीन तो दवा नहीं होती ?'—मनोहर ने कहा।

'कौन कहता है कि वेसलीन दवा होती है ? अरे उसने हाथ में लगा दा और घाव आप ही आप अच्छा हो गया। वह अंगरेज बन बैठा डाक्टर —और उसका नाम हो गया। शाहंशाह शाहजहाँ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस फिरंगी डाक्टर से कहा—'माँगों।' उस फिरंगी ने कहा—'हुजूर, मैं इस दवा को हिन्दुस्तान में रायज करना चाहता हूँ, इसलिये हुजूर मुझे हिन्दुस्तान में तिजारत करने की इजाजत दे दें।' बादशाह सलामत ने जब यह सुना कि डाक्टर हिन्दुस्तान में इस दवा का प्रचार करना चाहता है, तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'मंजूर। और कुछ माँगो।' तब उस चालाक डाक्टर ने जानते हो क्या माँगा ? उसने कहा—हुजूर, मैं एक तम्बू तानना चाहता हूँ, जिसके नीचे इस दवा के पीपे इकट्ठे किये जायेंगे। जहाँपनाह यह फ़रमा दें कि उस तम्बू के नीचे जितनी जमीन आवेगी, वह जहाँपनाह ने फिरङ्गियों को बख्श दी।' शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी। उन्होंने सोचा, तम्बू के नीचे भला कितनी जगह आयेगी। उन्होंने कह दिया—'मंजूर।'

'हाँ, तो शाहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, छल-कपट उन्हें आता न था और वह अंगरेज था दुनिया देखे हुए। सात समुद्र पार करके हिन्दुस्तान आया था। पहुँचा विलायत, वहाँ उसने बनवाया रबड़ का एक बहुत बड़ा तम्बू और जहाज पर तम्बू लदवा कर चल दिया हिन्दुस्तान।

कलकत्ते में उसने तम्बू लगवा दिया। यह तम्बू कितना ऊँचा था, इसका अन्दाज आप नहीं लगा सकते। उस तम्बू का रङ्ग नीला था। तो जनाब, वह तम्बू लगा कलकत्ते में और विलायत से पीपे पर पीपे लद-लदकर आने लगे। उन पीपों में वेसलीन की जगह भरा था एक-एक अँगरेज जवान, मय बन्दूक़ और तलवार के। सब पीपे तम्बू के नीचे रखवा दिये गये। जैसे-जैसे पीपे जमीन घेरने लगे, वैसे-वैसे तम्बू बढ़ा-बढ़ा कर जमीन घेर दी गयी। तम्बू तो रबड़ का था, जितना बढ़ाया, बढ़ गया। अब जनाब, तम्बू पहुँचा पलासी। तुम लोगों ने पढ़ा होगा कि पलासी का युद्ध हुआ अरे सब झूठ है। असल में तम्बू बढ़ते-बढ़ते पलासी पहुँचा था और उस वक्त मुग़ल बादशाह का हरकारा दौड़ा था दिल्ली। बस यह कह दिया गया कि पलासी की लड़ाई हुई। जी हाँ, उस वक्त दिल्ली में शाहंशाह शाहजहाँ की तीसरी या चौथी पीढ़ी सल्तनत कर रही थी। हरकारा जब दिल्ली पहुँचा, उस वक्त बादशाह सलामत की सवारी निकल रही थी। हरकारा घबराया हुआ था। वह इन फिरंगियों की चालों से हैरान था। उसने मौक़ा देखा न महल, वहीं सड़क पर खड़े होकर उसने चिल्ला कर कहा—'जहाँपनाह ग़जब हो गया। बदतमीज फिरंगी अपना तम्बू पलासी तक खींच लाये हैं, और चूँकि कलकत्ते से पलासी तक की जमीन तम्बू के नीचे आ गई है, इसलिये इन फिरंगियों ने उस जमीन पर कब्जा कर लिया है। जो इनको मना किया तो बदतमीजों ने शाही फ़रमान दिखा दिया।' बादशाह सलामत की सवारी रुक गई थी। उन्हें बुरा लगा। उन्होंने हरकारे से कहा—'म्याँ हरकारे, मैं कर ही क्या सकता हूँ। जहाँ तक फिरङ्गियों का तम्बू घिर जाय, वहाँ तक की जगह उनकी हो गई, हमारे बुज़ुर्ग यह कह गये हैं।' बेचारा हरकारा अपना-सा मुँह लेकर वापस चला गया।

'हरकारा लौटा, और इन फिरङ्गियों का तम्बू बढ़ा। अभी तक तो आते थे पीपों में आदमी, अब आने लगा तरह-तरह का सामान। हिन्दुस्तान का व्यापार फिरङ्गियों ने अपने हाथ में ले लिया। तम्बू बढ़ता ही रहा और पहुँच गया बक्सर। इधर तम्बू बढ़ा और लोगों की घबराहट बढ़ी।

यह जो किताबों में लिखा है कि बक्सर की लड़ाई हुई, यह ग़लत है! भाई, जब बक्सर पहुँचा, तो फिर हरकारा दौड़ा।

'अब ज़रा बादशाह सलामत की बात सुनिये। वह जनाब दीवान-ख्वास में तशरीफ़ रख रहे थे। उनके सामने सैकड़ों, बल्कि हजारों मुसाहब बैठे थे। बादशाह सलामत हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे—सामने एक साहब जो शायद शायर थे, कुछ गा-गाकर पढ़ रहे थे और कुछ मुसाहब गला फाड़-फाड़कर वाह-वाह चिल्ला रहे थे। कुछ लोग तीतर और बटेर लड़ा रहे थे। हरकारा जो पहुँचा, तो यह सब बन्द हो गया। बादशाह सलामत ने पूछा—'म्याँ हरकारे, क्या हुआ—इतने घबराये हुए क्यों हो?' हाँफते हुए हरकारे ने कहा—'जहाँपनाह, इन बदजात फिरङ्गियों ने अंधेर मचा रक्खा है। वह तम्बू बक्सर तक खींच लाये। बादशाह सलामत को बड़ा ताज्जुब हुआ। उन्होंने अपने मुसाहबों से पूछा—'मियाँ, यह हरकारा कहता है कि फिरंगी अपना तम्बू कलकत्ते से बक्सर तक खींच लाये। यह कैसे मुमकिन है?' इस पर एक मुसाहब ने कहा—'जहाँपनाह, ये फिरंगी जादू जानते हैं, जादू।' दूसरे ने कहा—'जहाँपनाह, इन फिरंगियों ने जिन्नात पाल रक्खे हैं—जिन्नात सब कुछ कर सकते हैं।' बादशाह सलामत की समझ में कुछ आया नहीं। उन्होंने हरकारे से कहा—'म्याँ हरकारे, तुम बतलाओ वह तम्बू किस तरह बढ़ आया।' हरकारे ने समझाया कि तम्बू रबड़ का है। इस पर बादशाह सलामत बड़े खुश हुए। उन्होंने कहा—'फिरंगी बड़े चालाक हैं, पूरे अक़ल के पुतले हैं।' इस पर सब मुसाहबों ने कहा 'इसमें क्या शक है, जहाँपनाह बजा फरमाते हैं। बादशाह सलामत मुसकराये—'अरे भाई किसी चोबदार को भेजो, जो इन फिरंगियों के सरदार को लावे! मैं उसे खिलअत दूँगा।' सब मुसाहब चिल्ला उठे—'वल्लाह! जहाँपनाह एक दरियादिल हैं—इस फिरंगी सरदार को जरूर खिलअत देना चाहिए।' हरकारा घबराया। वह आया था शिकायत करने, यहाँ बादशाह सलामत फिरंगी-सरदार को खिलअत देने पर आमादा थे। वह चिल्ला उठा—'जहाँपनाह! इन फिरंगियों ने जहाँपनाह की सल्तनत का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने तम्बू के नीचे करके उस पर क़ब्जा कर

लिया है। जहाँपनाह, ये फिरंगी जहाँपनाह की सल्तनत छीनने पर आमादा दिखायी देते हैं।' मुसाहब चिल्ला उठे—'ऐं, ऐसा ग़जब।' बादशाह सलामत की मुसकराहट ग़ायब हो गयी। थोड़ी देर तक सोचकर उन्होंने कहा—'मैं क्या कर सकता हूँ? हमारे बुज़ुर्ग इन फिरंगियों को उतनी जगह दे गये हैं, जितनी तम्बू के नीचे आ सके। भला मैं उसमें कर ही क्या सकता हूँ। हाँ, फिरंगी सरदार को खिलअत न दूँगा।' इतना कह कर बादशाह सलामत फिरंगियों की चालाकी अपनी बेगमात से बतलाने के लिए हरम के अन्दर चले गये। हरकारा बेचारा चुपचाप लौट आया।

'जनाब, उस तम्बू ने बढ़ना जारी रक्खा। एक दिन क्या देखते हैं कि विश्वनाथपुरी काशी के ऊपर वह तम्बू तन गया। अब तो लोगों में भगदड़ मच गयी। उन दिनों राजा चेतसिंह बनारस की देख-भाल करते थे। उन्होंने उसी वक्त बादशाह सलामत के पास हरकारा दौड़ाया। वह दीवान खास में हाजिर किया गया। हरकारे ने बादशाह सलामत से अर्ज की कि वह तम्बू बनारस तक पहुँच गया है और तेजी के साथ दिल्ली की तरफ़ आ रहा है। बादशाह सलामत चौंक उठे। उन्होंने हरकारे से कहा —'तो म्याँ हरकारे, तुम्हीं बताओ, क्या किया जाय?' वहाँ बैठे हुए दो-एक उमराओं ने कहा—'जहाँपनाह एक बहुत बड़ी फ़ौज भेज कर इन फिरंगियों का तम्बू कटवा दिया जाय और कलकत्ते भेज दिया जाय। हम लोग लड़ने को तैयार हैं। जहाँपनाह का हुक्म भर हो जाय। इस तम्बू की क्या हक़ीक़त है, एक मर्तबा आसमान को भी छोटा कर दें!' बादशाह सलामत ने कुछ सोचा, फिर कहा—'क्या बतलाऊँ, हमारे बुज़ुर्ग बादशाह शाहजहाँ इन फिरंगियों को तम्बू के नीचे जितनी जगह आ जाये, वह बख़्श गये हैं। बख़्शीशनामा की रू से हम लोग कुछ नहीं कर सकते। आप जानते हैं, हम तैमूर की औलाद हैं, एक दफ़ा जो जवान दे दी, वह दे दी। तम्बू का छोटा करना तो गैर मुमकिन है। हाँ, कोई ऐसी हिक़मत निकाली जाय, जिससे ये फिरंगी अपना तम्बू आगे न बढ़ा सकें। इसके लिए दरबार-आम किया जाय और यह मसला वहाँ पेश हो।

'इधर दिल्ली में तो यह बातचीत हो रही थी और उधर इन फिरंगियों

का तम्बू इलाहाबाद, इटावा ढँकता हुआ आगरे आ पहुँचा। दूसरा हरकारा दौड़ा। उसने कहा—'जहाँपनाह, वह तम्बू आगरे तक बढ़ आया है। अगर अब भी कुछ नहीं किया जाता, तो ये फिरंगी दिल्ली पर भी अपना तम्बू तानकर अपना क़ब्जा कर लेंगे।' बादशाह सलामत घबराये—दरबार आम किया गया। सब अमीर-उमराव इकट्ठा हुए। जब सब लोग इकट्ठा हो गये, तो बादशाह सलामत ने कहा—'आज हमारे सामने एक अहम मसला पेश है। आप लोग जानते है कि हमारे बुजुर्ग शाहंशाह शाहजहाँ ने फिरंगियों को इतनी जमीन बख़्श दी थी; जितनी उनके तम्बू के नीचे आ सके। इन्होंने अपना तम्बू कलकत्ते में लगाया था। लेकिन वह तम्बू है रबड़ का और धीरे-धीरे ये लोग तम्बू आगरे तक खींच लाये। हमारे बुजुर्गों से जब यह कहा गया, तब उन्होंने कुछ करना मुनासिब न समझा; क्योंकि शाहंशाह शाहजहाँ अपना क़ौल हार चुके हैं। हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं और अपने क़ौल के पक्के हैं। अब आप लोग बतलाइए, क्या किया जाय?' अमीरों और मनसबदारों ने कहा—'हमें इन फिरंगियों से लड़ना चाहिए और इनको सजा देनी चाहिए। इनका तम्बू छोटा करवा कर कलकत्ते भिजवा देना चाहिए।' बादशाह सलामत ने कहा—'लेकिन, हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारा क़ौल टूटता है।' इसी समय तीसरा हरकारा हाँफता हुआ बिना इत्तला कराए ही दरबार में घुस आया। उसने कहा—'जहाँपनाह, वह तम्बू दिल्ली पहुँच गया। वह देखिये क़िले तक आ पहुँचा।' सब लोगों ने देखा वास्तव में हजारों गोरे खाक़ी वर्दी पहने और हथियारों से लैस, बाजा बजाते हुए तम्बू को क़िले की तरफ खींचते हुए आ रहे थे। उस वक्त बादशाह सलामत उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—'हमने तै कर लिया, हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारे बुजुर्गों ने जो कुछ कह दिया वही होगा। उन्होंने तम्बू के नीचे की जगह फिरंगियों को बख़्श दी थी। अब अगर दिल्ली भी उस तम्बू के नीचे आ रही है तो आवे, मुग़ल सल्तनत जाती है तो जाय, लेकिन दुनिया यह देख ले कि अमीर तैमूर की औलाद हमेशा क़ौल की पक्की रही।' इतना कहकर बादशाह सलामत मय अपने अमीर

उमराओं के दिल्ली के बाहर हो गए और दिल्ली पर अँगरेजों का क़ब्जा हो गया। अब आप लोग देख सकते हैं, इस कलयुग में भी मुग़लों ने अपनी सल्तनत बख्श दी।'

हम सब लोग थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद मैंने कहा—'हीरोजी, एक प्याला चाय और पियो।'

हीरोजी बोल उठे—'इतनी अच्छी कहानी सुनने के बाद भी एक प्याला चाय। अरे, महुवे के ठर्रे का अद्धा तो हो जाता।'

कवि की स्त्री

[सुदर्शन]

(१)

सत्यवान

छात्रावस्था में मैं और मणिराम साथ ही साथ पढ़े थे। उस समय एक-दूसरे पर प्राण देते थे। बचपन के दिन बीत चुके थे। जब तक एक-दूसरे को देख न लेते, शान्ति न मिलती। उस समय हमें बुद्धि न थी। बाद में प्रेम का स्थान बैर ने लिया। दोनों एक दूसरे के लहू के प्यासे हो गये। तब हम शिक्षित हो चुके थे। एफ० ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात् हमारे रास्ते अलग-अलग हो गये। मणिराम मेडिकल कालेज में भर्ती हो गया। मैंने साहित्य-संसार में पाँव रक्खा। मुझे रुपये-पैसे की परवाह न थी। पूर्वजों की सम्पत्ति ने इस ओर से निश्चिन्त कर दिया था। रात दिन कविता के रस में लवलीन रहता और कई-कई दिन घर से बाहर न निकलता। इन दिनों मेरे सिर पर यही धुन सवार रहती थी। एक-एक पद पर घंटों खर्च हो जाते थे। अपनी रचना को देखकर मैं गर्व से झूमने लग जाता था। कभी-कभी मुझे अपनी कविता में तुलसीदास की उपमा और सूरदास के रूपकों का स्वाद आता था, परन्तु जब मेरी कविताएँ पत्रों में निकलने लगीं, तो मेरा कवित्व का मद उतरने लगा। मद उतर गया परन्तु उनका प्रभाव न गया। यह प्रभाव प्रख्याति, कीर्ति और यश का प्रभाव था। थोड़े ही वर्षों में मेरा नाम हिन्दी संसार में प्रसिद्ध हो गया.। मैं अब कुछ काम न करता था। केवल बड़े-बड़े लोगों को पार्टियाँ दिया करता था। अब इसके बिना मुझे चैन न मिलता था। अब कविता में भी उतना मन न लगता था। पहले मेरा समय इसी की भेंट होता था। अब जी बहलाने की चीज हो गई थी, परन्तु जब कभी

कुछ लिखता तो रंग बाँध देता था। साधारण विषय को भी लेता, तो उसमें जान डाल देता था।

उधर मणिराम चिकित्सा के ग्रन्थ के साथ सिर फोड़ता रहा। पाँच वर्ष बाद असिस्टेंट सर्जरी की परीक्षा पास करके उसने अपनी दूकान खोल ली। परीक्षा के परिणाम निकलने के समय उसका नाम एक बार समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् फिर कभी उसका नाम पत्रों में नहीं छपा। इधर मेरी प्रशंसा में प्रतिदिन समाचार-पत्रों के पृष्ठ भरे रहते थे। वह दूकान पर सारा दिन बैठा रोगियों की बाट देखता रहता था, पर उसका नाम कौन जानता था। लोग उधर जाते झिझकते थे। मैं उसकी ओर देखता, तो घृणा से मुँह फेर लेता; जिस प्रकार मोटर पर चढ़ा हुआ मनुष्य पैदल जाने वालों को घृणा से देखता है।

(२)

एक दिन एक पत्र आया। उसमें मेरी कवित्व-कला की बहुत ही प्रशंसा की गई थी और मुझे देश और जाति के लिए सम्मान और गौरव का हेतु बनाया गया था। मेरे पास ऐसे पत्र प्रायः आते रहते थे। यह कोई नयी बात न थी। कभी-कभी ऐसे पत्रों को देख कर झुँझला उठता था, परन्तु यह पत्र एक स्त्री की ओर से था। हम पुरुषों की ओर से उपेक्षा कर सकते हैं, पर किसी कोमलांगी के साथ यह व्यवहार करने को जी नहीं चाहता और यह पत्र किसी साधारण स्त्री की ओर से नहीं था। इसकी लेखिका देहरादून के प्रसिद्ध रईस ठाकुर हृदयनारायण की शिक्षिता लड़की सावित्री थी, जिसने इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा पास की थी। उसके सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में कई लेख निकले थे, परन्तु मैंने उन्हें पढ़ने की आवश्यकता न समझी थी। इस पत्र ने सब कुछ याद करा दिया। मैंने उसी समय लेखनी पकड़ी और जवाब लिखने बैठ गया, परन्तु हाथ जवाब दे रहे थे। ऐसी लगन से कोई विद्यार्थी अपनी परीक्षा के पर्चे भी न लिखता होगा। एक-एक शब्द पर रुकता और नये-नये शब्द ढूँढ़कर, नये-नये विचार लेखनी को अर्पण करता जाता था। मैंने सावित्री और उसकी

विद्वत्ता की प्रशंसा में कोश के सम्पूर्ण सुन्दर शब्द समाप्त कर दिये। अपनी अयोग्यता को भी स्वीकार किया—आप मेरी प्रशंसा करती हैं, यह आपका बड़प्पन है, अन्यथा मेरी कविता में धरा ही क्या है ? न कल्पना में सौन्दर्य है, न शब्दों में मिठास। रस कविता का प्रधान अंग है, वह मेरी कविता से कोसों दूर है। हम कवि बन बैठते हैं, परन्तु कवि बनना आसान नहीं। इसके लिए देखने वाली आँख और सुनने वाले कान दोनों की आवश्यकता होगी, न कि अपनी प्रशंसा कराने का यह एक बढ़िया ढंग है।

कुछ दिन के पश्चात् इस पत्र का उत्तर आया—यह जो कुछ आपने लिखा है आप जैसे महापुरुषों के योग्य ही है, परन्तु मैं तो आपको टेनिसन और वर्ड्सवर्थ से बढ़कर समझती हूँ। आप कहते हैं कि आपकी कविता रसहीन है; होगी; परन्तु मुझ पर वह जादू कर देती है। घंटों प्रेमसागर में डुबकियाँ लगाती हूँ। खाना-पीना भूल जाती हूँ। जी चाहता है, आपकी लेखनी चूम लूँ।

यह पत्र शराब की दूसरी बोतल थी और अन्तिम वाक्य ने तो हृदय में आग लगा दी। मैंने फिर उत्तर दिया और पत्र में हृदय खोल कर रख दिया। कवि अपने चाहने वाले को आकाश पर चढ़ा देता है। मैंने भी सावित्री की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर दिया। लिखा—कारलाइल का कथन है कि कवि केवल वही नहीं जो कविता लिख सकता है, प्रत्युत प्रत्येक-व्यक्ति जो कविता समझ सकता है और उसके मर्म तक पहुँच सकता है, कवि है। इस रूप में तुम भी कवि हो। मैंने अच्छों-अच्छों को देखा है, कविता के महत्व को नहीं समझते। परन्तु तुम तो बाल की खाल निकालती हो, तुम्हारी 'योग्यता पर मुझे आश्चर्य होता है। धन्य है भारतभूमि, जिसमें तुम जैसी देवियाँ खेलती हैं।'

मैंने सैकड़ों उपन्यास पढ़े थे, अच्छी-से-अच्छी कविताएँ देखी थीं, परन्तु जो रस, स्वाद सावित्री के पत्रों में था वह किसी में न था। यही जी चाहता था कि उन्हीं को पढ़ता रहूँ।

(३)

सावित्री

निस्सन्देह वे मुझे चाहते हैं, अन्यथा इस प्रकार तुरन्त ही उत्तर-प्रत्युत्तर न देते। आज पत्र लिखती हूँ, तीसरे दिन उत्तर आ जाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरे पत्र की राह देख रहे थे। उनके पत्र उनकी कविता से अधिक सरस हैं, पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसी चुटकी लेते हैं कि मन अधीर हो उठता है। मैंने चित्र माँग भेजा था। उत्तर देते हैं—तुमने लिखा है कि चित्र भेज रही हूँ, परन्तु मुझे तो आज तक नहीं मिला। रजिस्ट्री की रसीद हो तो भेज दो, डाकखाने पर नालिश कर दूँ। हठात् मुझे अपना चित्र भेजना पड़ा। उत्तर में उनका चित्र आ गया। मेरा विचार सच्चा निकला। कैसे सुन्दर हैं! मुख पर राजकुमारों जैसा लावण्य झलकता है। मेरे हृदय को पहले ही चैन न था, चित्र ने रहा-सहा भी छीन लिया।

रात को नींद नहीं आती। उनकी अंतिम कविता ने उनका हृदय मुझ पर खोल दिया। 'प्रीतम से' कैसा प्यारा शीर्षक है! एक-एक अक्षर से प्रेम टपकता है। इससे पहली कविता 'पाती निहार कर' भी मुझ पर ही लिखी गई थी। लिखती हूँ, तुम मुझे बदनाम करके छोड़ोगे। यह तो कहो, तुम मेरे पीछे पल्ले झाड़ कर क्यों पड़ गये हो? एक और कविता 'एकान्त में' प्रकाशित हुई है। इससे जान पड़ता है, अभी तक कुँआरे हैं। तो मेरी····परन्तु वे इतना परिश्रम क्यों करते है? बहुत पढ़ना-लिखना मनुष्य को बाँस की तरह खोखला कर देता है। लिखती हूँ, कविता लिखना बन्द कर दो और अपने शरीर की ओर ध्यान दो, मुझे बड़ी चिन्ता रहती है। इसके बाद मैंने उनके सम्बन्ध में सब कुछ मालूम कर लिया। वे हमारी ही बिरादरी के हैं और कुँआरे हैं।

मैंने पत्र लिखा। पहले के पत्रों और इस पत्र में बहुत भेद था। इसमें कोई संकोच कोई बनावट न था—'तुम्हारे पत्रों से संतोष नहीं होता। जी चाहता है, तुम्हारे दर्शन हों, तो गिर कर तुम्हारे पैरों को चूम लूँ। अब अधिक न तरसाओ। प्रतिक्षण सामने देखना चाहती हूँ। प्रायः

सोते-सोते चौंक पड़ती हूँ। सोचती हूँ, तुम्हारे खाने-पीने का क्या प्रबन्ध होगा ? रात को अधिक समय तक जागते तो नहीं रहते ? स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। उसका पूरा-पूरा ध्यान रक्खो। मुझे पत्र लिखना न भूलो। जी डर जाता है। मुझे अपने चरणों की दासी समझो।'

चौथे दिन उत्तर आया, तो मैं जमीन से उछल पड़ी। वे मेरे साथ विवाह करने को सहमत ही नहीं, प्रत्युत अधीर हो रहे थे। मैंने आँखें बन्द कर लीं और आने वाले काल्पनिक सहवास का चिन्तन करके आनन्द के झूले में झूलने लगी। इतने में किसी के पैरों की चाप सुनाई दी। मेरी आँखें खुल गई, देखा, छोटा प्रभाशंकर चित्रों का एक बंडल लिए खड़ा है। मैंने आश्चर्य से पूछा, 'प्रभा, क्या है ?'

'बाबू जी कहते हैं, ये चित्र देखकर इनमें से एक छाँट दो। प्रत्येक चित्र के साथ-साथ एक पत्र है, उसे भी पढ़ती जाना !'

यह कहते-कहते प्रभा ने वह बंडल मेरे हाथ में दे दिया, और आप तेजी से बाहर निकल गया।

मैंने बंडल खोला। इसमें उन पुरुषों के फोटो थे, जो मुझसे विवाह करना चाहते थे। मैंने मुस्कराते-मुस्कराते सब पर एक उचटती हुई दृष्टि डाली। कोई बैरिस्टर था, कोई इंजीनियर, कोई डाक्टर था, कोई ठेकेदार। परन्तु मुझे कोई पसन्द न आया। मेरे अंतःकरण में एक ही मूर्ति के लिए स्थान था और वहाँ पहले ही से एक मूर्ति विराजमान थी। मैंने फुर्ती से उठकर अपना सन्दूक खोला और उसमें से उनका फोटो निकाल कर उस पर Passed शब्द लिखकर उसे बाबूजी के पास भेज दिया। वे दङ्ग रह गये। उन्हे यह आशा न थी। वे समझते थे, मैं किसी लखपती का बेटा पसन्द करूँगी। परन्तु मैंने एक कवि को चुना। वे निर्धन न थे, पर इतने धनाढ्य भी न थे। मेरे चाहने वालों में कई पुरुष ऐसे थे, जो उनको खरीद सकने की सामर्थ्य रखते थे। परन्तु प्रेम को अन्धा कहा गया है। उसे देखना किसने सिखाया है ? बाबूजी मेरी इच्छा के अनुसार सहमत हो गये। उन्होंने मुझे बड़े लाड़-प्यार से पाला था,

मेरी शिक्षा पर सहस्रों रुपये खर्च किये थे। इस विषय में भी उन्होंने मुझे पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी थी।

(४)

जिस बात का भय था, अंत में वही हुआ। उन्हें बुखार आने लगा है। कुछ दिन हुए, उनके एक मित्र मिलने आये थे। वे कहते हैं कि डॉक्टरों को तपेदिक का सन्देह है। यह बात सुनकर बाबूजी बड़े व्याकुल हुए। सदा उदास रहते हैं, जैसे कोई रोग लग गया हो। उनकी इच्छा है मैं अब इस विवाह का विचार छोड़ दूँ। असली आग में कूदना बुद्धिमत्ता नहीं है, परन्तु मैं इसकी परवाह नहीं करती। संसार की आँखों में हम कुँवारे हैं, पर जब मन मिल गये, प्रेम की डोरी बँध गई, तो शेष क्या रह गया? अब मैं उनकी हूँ और कोई नियम, कोई विचार मुझे उनसे अलग नहीं रख सकता है। यहाँ तक कि मृत्यु को भी यह साहस नहीं। सावित्री ने सत्यवान को यमदूत के पंजे से छुड़ा लिया था, क्या मैं उन्हें व्याधि के मुख से न बचा सकूँगी? मैं भी सावित्री हूँ। उसी भारत की मिट्टी से मेरा जन्म हुआ है, मैं उसके कारनामे को आज फिर जिन्दा कर दिखाऊँगी।

सायंकाल हो गया था। बाबूजी अपने कमरे में बैठे थे। मुझे चिन्ता हुई। यह समय उनके क्लब जाने का था! सर्दी गर्मी में बराबर जाते थे। यह उनका नियम था, जिसमें कभी नागा न होता था। मैं उनके पास जाकर बैठ गई और धीरे से बोली—'क्यों आज आप क्लब नहीं गये?'

बाबूजी ने कोई उत्तर न दिया।

"आप उदास दिखाई देते हैं।"

बाबूजी ने कहा—"तुम्हें इससे क्या।"

"आपका स्वास्थ्य-बिगड़ जायगा।"

"कोई परवाह नहीं।"

"आपका खाना आधा भी नहीं रहा।"

"मैं यह सब कुछ जानता हूँ।"

"किसी डाक्टर को दिखाइये, रोग का बढ़ना अच्छा नहीं।"

"अब मेरा डाक्टर यमराज ही होगा।"

मेरी आँखों में आँसू आ गये, सिर नीचे झुक गया। बाबूजी दूसरी ओर देख रहे थे, परन्तु मेरे आँसू उन्होंने देख लिये। बातचीत का रंग बदल गया; बोले—"सावित्री, मैं तो अपने भाग्य को रो रहा हूँ, पर तुम्हें क्या हुआ ?"

मैंने उनकी ओर इस प्रकार देखा, जैसे उन्होंने मुझ पर कोई बड़ा अत्याचार किया हो और कहा—"आप मेरे पिता हैं, क्या आप भी मेरे इन आँसुओं का रहस्य नहीं समझते ? आपकी हर एक बात छिपी कटार है, हर एक वचन विष में बुझा हुआ बाण। आपके मित्र हैं, सुहृद हैं, काम-काज है, क्लब है। आप बाहर चले जाते हैं, मैं बैठी कर्मों को रोती हूँ। मैं लड़की हूँ, लड़कियों के मुँह से ऐसी बात अच्छी नहीं लगती। परन्तु क्या करूँ ? देखती हूँ, मेरे जीवन का सर्वस्व लुट रहा है। चुप कैसे रहूँ। आप देर करके मेरे भविष्य को अन्धकारमय बना रहे हैं।"

बाबूजी ने आतुर होकर कहा—"परन्तु सावित्री, देखकर मक्खी निगलना असम्भव नहीं। क्या तुझे विश्वास है कि वह तेरी सेवा-सुश्रूषा से अच्छा हो जायगा ?"

"हाँ, मुझे विश्वास है कि मैं उन्हें बचा लूँगी। कवि बेपरवाह होते हैं, प्रायः पढ़ने-लिखने में लगे रहते हैं। मैं उन्हें जीवन के समस्त झंझटों से निश्चिन्त कर दूँगी और घर का सारा प्रबन्ध स्वयं सँभाल लूँगी। दिन-रात कविता लिखने के कारण ही उनकी यह दशा हुई है। जिस पत्रिका को देखो उसी में उनकी कविता दिखाई देती है। मैं उनको इस काम से रोक दूँगी। कहूँगी, पहले अपने स्वास्थ्य की ओर तो देखो, पीछे कविता भी हो लेगी। नौकरों के हाथ की रोटियाँ खाते हैं, खाया-पिया क्या तन लगेगा ? स्तुति करने को सभी हैं, सहानुभूति किसी को नाम की नहीं।"

बाबूजी पर मेरी इन बातों का बहुत ही प्रभाव हुआ। कुछ समय के लिए उनका मुँह बन्द हो गया। फिर बोले, "यह सब ठीक है, परन्तु कहने और करने में बड़ा भेद है। मुझे सन्देह है कि जो कुछ तुम कह रही हो, उसे कर भी सकोगी या नहीं ?"

मेरा मुख लाल हो गया, जैसे भरे-बाजार में सिर से दुपट्टा उतर गया हो, फिर संभल कर बोली—"मैं अपने वचनों के उत्तरदायित्व से अपरिचित नहीं। जो कुछ कहा है, करके दिखा दूँगी।"

"यह सब भावना की बातें हैं; समय पर धुएँ की नाईं उड़ जाती हैं।"

"मेरे विचार से संसार भावनाओं पर ही जीता है।"

बाबूजी चुप हो गये, कोई उत्तर न सूझा। थोड़ी देर तक सिर झुका कर सोचते रहे। फिर एकाएक उठे और मुझसे बिना कुछ कहे-सुने बाहर चले गये।

(५)

विवाह हो गया। यह बात झूठी निकली। उन्हें कोई रोग न था। यह किसी की शरारत थी। उनका स्वास्थ्य देखकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। मुख पर लाली है, नेत्रों में ज्योति। मुझे देखते है, तो कली की नाईं खिल जाते हैं। मैने कई कवियों के चरित्र पढ़े हैं, और एक दोष सब में देखा है। वह यह कि उनका आचरण कुछ इतना पवित्र नही होता है। परन्तु उनके विषय में कल्पना करना भी पाप है। वह बहुत शर्मीले हैं, पराई स्त्री के सामने आँख नहीं उठाते। वह इसे भी सदाचार में गिरा हुआ समझते हैं। मेरी कोई सहेली आ जाती, तो उठकर अन्दर चले जाते हैं। मैं बहुतेरा समझाती हूँ, कहती हूँ, तुम मर्द हो। स्त्री पर्दा नहीं करती, तो पुरुष क्यों करे। परन्तु वे हँस कर टाल देते हैं। मुझे उन पर पूरा-पूरा विश्वास है। मैं समझती हूँ, सब कुछ हो सकता है परन्तु उनके मन में मैल नहीं आ सकता। ऐसा पुरुष मिल जाना मेरा सौभाग्य है। उन्होंने अपने आप को मुझ पर छोड़ दिया है। घर-बार का स्याह-सफेद सब मेरे ही हाथ में है। कपड़े तक स्वयं नहीं बदलते। यदि मैं न कहूँ तो पूरा अठवाड़ा निकल जाता है और उन्हें ध्यान भी नहीं आता कि कपड़े मैले हो गये हैं। उनके दूध का, फलों का, कमरे की सफ़ाई का मुझे ही प्रबन्ध करना पड़ता है। सोचती हूँ, यदि मेरे स्थान पर कोई दूसरी बे-परवाह मनमानी करने वाली स्त्री आ जाती तो क्या होता। घर में तो धूल

उड़ने लगती। थोड़े ही में बीमार हो जाते। उन्हे दफ्तर की सफ़ाई का भी ध्यान नहीं। उनका भी मुझे ही ध्यान रखना पड़ता है। नौकर सिर चढ़ा रक्खे थे, पर अब संभल गये हैं। ये निगोड़े आप-से-आप तो कोई काम करते ही नहीं। जब तक सिर पर न खड़े रहो तब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। कभी-कभी मुझे क्रोध भी आ जाता है। ये क्यों दबदबे से काम नहीं लेते। मैं चार दिन के लिए बाहर चली जाऊँ, तो घर में कीड़े रेंगने लगें।

एक दिन मैंने कहा—"सारे भारतवर्ष में तुम्हारी कविता की धाक बँधी हुई है, परन्तु क्या यह भी किसी को पता है कि तुम इतने बेपरवाह, ऐसे आलसी हो?"

उन्होंने हँसकर उत्तर दिया—"तुम एक लेख न लिख दो।"

"बदनाम हो जाओगे।"

"उसमें से कुछ भाग तुम्हें भी तो मिलेगा।"

"मैं क्यों लेने लगूँगी। तुम हँस कर टाल देते हो। ज़रा सोचो तो सही, ऐसी बेपरवाही भी किस काम की?"

"मैंने तुम्हे घर की रानी बना दिया।"

मैंने धीरे से कहा—"घर की रानी मैं बनी, परन्तु तुम अपने दफ़्तर की ओर तो ध्यान दिया करो।"

"मैं तुम्हें अपना सुपरिन्टेन्डेन्ट समझता हूँ।"

मैं रूठ कर चली गयी, परन्तु हृदय आनन्द के हिलोरें ले रहा था जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल पर नाचता है। दूसरे दिन प्रातः-काल मैं उनके दफ़्तर की ओर गयी, तो दरवाजे के साथ एक छोटा-सा बोर्ड लटकता देखा। उस पर लिखा था—

सावित्री देवी, बी० ए०, सुपरिन्टेन्डेन्ट।

मैंने उसे जल्दी से उतार कर उनके सामने जा फेंका और कहा—"ये शरारतें देखकर लोग क्या कहेंगे।"

उन्होंने मेरी ओर देखा और मुस्कराकर भुजाएँ फैला दीं।

(६)

सन्ध्या का समय था। मैंने अपनी सबसे बढ़िया पोशाक पहनी और उनके पास जाकर कहा—"बाहर चलोगे थोड़ा घूम आएँ।"

वे उस समय कविता में मग्न थे, धीरे से बोले—"इस समय बात न करो। बड़ा विचित्र विचार सूझा है, उसको प्रकट करने के लिए शब्द ढूँढ़ रहा हूँ।"

मुझे विष-सा चढ़ गया। कैसे पुरुष हैं, सदा अपनी ही धुन में मग्न रहते हैं। इतना भी नहीं होता कि मेरी किसी समय तो मान लिया करें। पहले मुझे देखकर प्रसन्न हो जाते थे, परन्तु अब तो ऐसा प्रतीत होता है; जैसे इनका हृदय प्रेम से शून्य हो गया है। हाँ, कविता में हृदय निकाल कर रख देते हैं। मेरी आँखों से आग बरसने लगी, मुँह से बोली—"सदा कविता ही सूझती रहती है या किसी समय संसार का भी ध्यान आता है?"

"इस कविता से साहित्य-संसार में शोर मच जायगा।"

"तुम्हें मेरा भी ध्यान है या नहीं?"

"यह अपने हृदय से पूछो।"

"मैं हृदय से नहीं पूछती, स्वयं तुमसे पूछती हूँ। जरा आँखें उठाकर उत्तर दो न।"

"यह कविता देखकर फड़क उठोगी। ऐसी कविता मैंने आज तक नहीं लिखी।"

मैंने हताश-सी होकर कहा—"मेरी बड़ी इच्छा थी कि आज थोड़ा घूम आती, इस कविता ने काम बिगाड़ दिया। जी चाहता है, कागज छीनकर दावात तोड़ दूँ।"

"दावात-काग़ज की हानि साधारण बात है, परन्तु ये विचार फिर न मिलेंगे। आज अकेली चली जाओ।"

"मेरा मन नहीं मानता।"

उन्होंने हाथ से इशारा किया और फिर काग़ज़ पर झुक गये। मेरे हृदय में बर्छी-सी लगी। उन्हें कविता का ध्यान है, मेरा नहीं। संसार में

नाम चाहते हैं, परन्तु घर में प्रेम नहीं चाहते। यहाँ से चली तो हृदय पर बोझ-सा प्रतीत हुआ। अकेली सैर को निकल गयी, परन्तु चित्त उदास था। सैर में जी न लगा। हार कर एक पुल पर बैठ गयी, और अपनी दशा पर रोने लगी। इन आँसुओं को देख कर पहले बाबूजी व्याकुल हो जाते थे। विवाह हुआ तो मेरे सुख-दुःख का भार एक कवि को सौंपा गया। परन्तु इन आँसुओं को देखने वाला, इन पर कलेजा मलने वाला कोई न था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मेरी नाव नदी के धार में वेग से बही जाती है और उस पर कोई मल्लाह नहीं है। मैं अपनी बेबसी पर कुढ़ती थी। कभी-कभी आँख उठा कर देख भी लेती थी कि कदाचित् आ रहे हों। प्रेम जल्दी निराश नहीं होता।

मेरी आँखों की धार जल की ओर थी! सोचती थी, यदि कोई मंत्र-बल से मुझे जल की लहर बना दे, तो गंगा की लहरों में खेलती फिरूँ। एकाएक आँखें झप गयीं, निद्रा देवी ने इच्छा पूरी कर दी। मैं गंगा में गिर गयी। बहुतेरे हाथ-पाँव मारे, पर निकल न सकी। प्रवाह में बहने लगी।

सुध आयी, तो मैं घर पर थी। वे सामने खड़े थे, कुर्सी पर एक डाक्टर बैठा था।

उन्होंने कहा—"अच्छी बचीं, इनका धन्यवाद करो। ये मेरे मित्र डाक्टर मणिराम हैं। आजकल काशी में इनके नाम की पूजा होती है। नदी में कूद न पड़ते, तो तुम्हारा बचना असम्भव था।"

मैं धीरे-से उठकर बैठ गयी। साड़ी को सिर पर कर लिया और डाक्टर साहब की ओर देखा, मगर आँखें मिल न सकीं। मैंने—"परमात्मा आपका भला करें" कहा और आँखें झुका लीं। परन्तु हृदय में हलचल मची हुई थी। चाहती थी, ये उठ कर चले जायँ। मेरा विचार था, इससे मेरा धीरज वापस आ जायगा। परन्तु जब वे चले गये तो जान पड़ा, मैं भूल पर थी। व्याकुलता बढ़ गयी। पानी की सैर को गई थी, आग खरीद लायी।

(७)

मणिराम

रात हुई, परन्तु मेरी आँखों में नींद न थी। उसे सावित्री की आँखों ने चुरा लिया था। उनमें कैसा आकर्षण था, कैसी बेबसी! जैसे कोई क़ैदी लोहे के जंगले के अन्दर से स्वतंत्र सृष्टि को देखता है और आह भर कर पृथ्वी पर बैठ जाता है। उसकी आँखें बार-बार मेरी ओर उठती थीं. परन्तु वह उठने न देती थी, जिस प्रकार माँ अपने अबोध को पराये खिलौने पकड़ते देख कर गोद में उठा लेती है। उस समय बालक किस प्रकार मचलता है? कैसा अधीर होता है? चाहता है कि माँ छोड़ दे, तो खिलौना लेकर भाग जाय। यही दशा सावित्री की थी। सत्यवान वहीं डटा रहा। यदि दो मिनट के लिए भी टल जाता तो जी भर कर देख लेती। कैसा सुन्दर है, जैसे चम्पा का फूल।

दूसरे दिन दूकान को जा रहा था, तो उसे दरवाज़े पर खड़ा पाया। उसने मेरी ओर प्यासे नयनों से देखा और मुस्करा दिया। इस मुस्कराहट में बिजली थी, मेरा धैर्य छूट गया। दूकान पर जी न लगा। सारा दिन साँझ की परीक्षा करता रहा। पल-पल गिनते दिन समाप्त हुआ और मैं घर को वापस लौटा। पैर भूमि पर न पड़ते थे। इस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, जैसे किसी को कुछ मिलने वाला हो। सत्यवान के मकान के पास पहुँचा तो पैर आपसे आप रुक गये, आँखें दरवाज़े पर जम गयीं। सहसा वह अन्दर से निकली और दरवाज़े के साथ लगकर खड़ी हो गयी। उसने मुँह से कुछ न कहा, परन्तु आँखों ने हृदय के पर्दे खोल दिये। इन आँखों में कैसा प्रेम था, कैसा कटाक्ष और उसके साथ स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा। चटनी में खटाई के साथ शक्कर मिलती हुई सी। मैं मतवाला-सा हो गया और झूमता-झामता घर पहुँचा, जैसे किसी शत्रु का दुर्ग जीत लिया हो।

कई दिन बीत गये। नयनों का प्रेम दृढ़ होता गया। पर उसे देख कर जी न भरता था, ओस की बूँदों से किसी की प्यास कब बुझी है? तृष्णा अपने पैर आगे बढ़ा रही थी। अन्तःकरण सावधान करता था.

नाम चाहते हैं, परन्तु घर में प्रेम नहीं चाहते। यहाँ से चली तो हृदय पर बोझ-सा प्रतीत हुआ। अकेली सैर को निकल गयी, परन्तु चित्त उदास था। सैर में जी न लगा। हार कर एक पुल पर बैठ गयी, और अपनी दशा पर रोने लगी। इन आँसुओं को देख कर पहले बाबूजी व्याकुल हो जाते थे। विवाह हुआ तो मेरे सुख-दुःख का भार एक कवि को सौंपा गया। परन्तु इन आँसुओं को देखने वाला, इन पर कलेजा मलने वाला कोई न था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मेरी नाव नदी के धार में वेग से बही जाती है और उस पर कोई मल्लाह नहीं है। मैं अपनी बेबसी पर कुढ़ती थी। कभी-कभी आँख उठा कर देख भी लेती थी कि कदाचित् आ रहे हों। प्रेम जल्दी निराश नहीं होता।

मेरी आँखों की धार जल की ओर थी! सोचती थी, यदि कोई मंत्र-बल से मुझे जल की लहर बना दे, तो गंगा की लहरों में खेलती फिरूँ। एकाएक आँखें झप गयीं, निद्रा देवी ने इच्छा पूरी कर दी। मैं गंगा में गिर गयी। बहुतेरे हाथ-पाँव मारे, पर निकल न सकी। प्रवाह में बहने लगी।

सुध आयी, तो मैं घर पर थी। वे सामने खड़े थे, कुर्सी पर एक डाक्टर बैठा था।

उन्होंने कहा—"अच्छी बचीं, इनका धन्यवाद करो। ये मेरे मित्र डाक्टर मणिराम हैं। आजकल काशी में इनके नाम की पूजा होती है। नदी में कूद न पड़ते, तो तुम्हारा बचना असम्भव था।"

मैं धीरे-से उठकर बैठ गयी। साड़ी को सिर पर कर लिया और डाक्टर साहब की ओर देखा, मगर आँखें मिल न सकीं। मैंने—"परमात्मा आपका भला करें" कहा और आँखें झुका लीं। परन्तु हृदय में हलचल मची हुई थी। चाहती थी, ये उठ कर चले जायँ। मेरा विचार था, इससे मेरा धीरज वापस आ जायगा। परन्तु जब वे चले गये तो जान पड़ा, मैं भूल पर थी। व्याकुलता बढ़ गयी। पानी की सैर को गई थी, आग खरीद लायी।

(७)

मणिराम

रात हुई, परन्तु मेरी आँखों में नींद न थी। उसे सावित्री की आँखों ने चुरा लिया था। उनमें कैसा आकर्षण था, कैसी वेबसी! जैसे कोई क़ैदी लोहे के जंगले के अन्दर से स्वतंत्र सृष्टि को देखता है और आह भर कर पृथ्वी पर बैठ जाता है। उसकी आँखें बार-बार मेरी ओर उठती थीं, परन्तु वह उठने न देती थी, जिस प्रकार माँ अपने अबोध को पराये खिलौने पकड़ते देख कर गोद में उठा लेती है। उस समय बालक किस प्रकार मचलता है? कैसा अधीर होता है? चाहता है कि माँ छोड़ दे, तो खिलौना लेकर भाग जाय। यही दशा सावित्री की थी। सत्यवान वहीं डटा रहा। यदि दो मिनट के लिए भी टल जाता तो जी भर कर देख लेती। कैसा सुन्दर है, जैसे चम्पा का फूल।

दूसरे दिन दूकान को जा रहा था, तो उसे दरवाजे पर खड़ा पाया। उसने मेरी ओर प्यासे नयनों से देखा और मुस्करा दिया। इस मुस्कराहट में बिजली थी, मेरा धैर्य छूट गया। दूकान पर जी न लगा। सारा दिन साँझ की परीक्षा करता रहा। पल-पल गिनते दिन समाप्त हुआ और मैं घर को वापस लौटा। पैर भूमि पर न पड़ते थे। इस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, जैसे किसी को कुछ मिलने वाला हो। सत्यवान के मकान के पास पहुँचा तो पैर आपसे आप रुक गये, आँखें दरवाज़े पर जम गयीं। सहसा वह अन्दर से निकली और दरवाज़े के साथ लगकर खड़ी हो गयी। उसने मुँह से कुछ न कहा, परन्तु आँखों ने हृदय के पर्दे खोल दिये। इन आँखों में कैसा प्रेम था, कैसा कटाक्ष और उसके साथ स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा। चटनी में खटाई के साथ शक्कर मिलती हुई सी। मैं मतवाला-सा हो गया और झूमता-झामता घर पहुँचा, जैसे किसी शत्रु का दुर्ग जीत लिया हो।

कई दिन बीत गये। नयनों का प्रेम दृढ़ होता गया। पर उसे देख कर जी न भरता था, ओस की बूँदों से किसी की प्यास कब बुझी है? तृष्णा अपने पैर आगे बढ़ा रही थी। अन्तःकरण सावधान करता था,

नाम चाहते हैं, परन्तु घर में प्रेम नहीं चाहते। यहाँ से चली तो हृदय पर बोझ-सा प्रतीत हुआ। अकेली सैर को निकल गयी, परन्तु चित्त उदास था। सैर में जी न लगा। हार कर एक पुल पर बैठ गयी, और अपनी दशा पर रोने लगी। इन आँसुओं को देख कर पहले बाबूजी व्याकुल हो जाते थे। विवाह हुआ तो मेरे सुख-दुःख का भार एक कवि को सौंपा गया। परन्तु इन आँसुओं को देखने वाला, इन पर कलेजा मलने वाला कोई न था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मेरी नाव नदी के धार में वेग से बही जाती है और उस पर कोई मल्लाह नहीं है। मैं अपनी बेबसी पर कुढ़ती थी। कभी-कभी आँख उठा कर देख भी लेती थी कि कदाचित् आ रहे हों। प्रेम जल्दी निराश नहीं होता।

मेरी आँखों की धार जल की ओर थी! सोचती थी, यदि कोई मंत्र-बल से मुझे जल की लहर बना दे, तो गंगा की लहरों में खेलती फिरूँ। एकाएक आँखें झप गयीं, निद्रा देवी ने इच्छा पूरी कर दी। मैं गंगा में गिर गयी। बहुतेरे हाथ-पाँव मारे, पर निकल न सकी। प्रवाह में बहने लगी।

सुध आयी, तो मैं घर पर थी। वे सामने खड़े थे, कुर्सी पर एक डाक्टर बैठा था।

उन्होंने कहा—"अच्छी बचीं, इनका धन्यवाद करो। ये मेरे मित्र डाक्टर मणिराम हैं। आजकल काशी में इनके नाम की पूजा होती है। नदी में कूद न पड़ते, तो तुम्हारा बचना असम्भव था।"

मैं धीरे-से उठकर बैठ गयी। साड़ी को सिर पर कर लिया और डाक्टर साहब की ओर देखा, मगर आँखें मिल न सकीं। मैंने—"परमात्मा आपका भला करें" कहा और आँखें झुका लीं। परन्तु हृदय में हलचल मची हुई थी। चाहती थी, ये उठ कर चले जायँ। मेरा विचार था, इससे मेरा धीरज वापस आ जायगा। परन्तु जब वे चले गये तो जान पड़ा, मैं भूल पर थी। व्याकुलता बढ़ गयी। पानी की सैर को गई थी, आग खरीद लायी।

(७)

मणिराम

रात हुई, परन्तु मेरी आँखों में नींद न थी। उसे सावित्री की आँखों ने चुरा लिया था। उनमें कैसा आकर्षण था, कैसी बेबसी! जैसे कोई क़ैदी लोहे के जंगले के अन्दर से स्वतंत्र सृष्टि को देखता है और आह भर कर पृथ्वी पर बैठ जाता है। उसकी आँखें बार-बार मेरी ओर उठती थीं, परन्तु वह उठने न देती थी, जिस प्रकार माँ अपने अबोध को पराये खिलौने पकड़ते देख कर गोद में उठा लेती है। उस समय बालक किस प्रकार मचलता है? कैसा अधीर होता है? चाहता है कि माँ छोड़ दे, तो खिलौना लेकर भाग जाय। यही दशा सावित्री की थी। सत्यवान वहीं डटा रहा। यदि दो मिनट के लिए भी टल जाता तो जी भर कर देख लेती। कैसा सुन्दर है, जैसे चम्पा का फूल।

दूसरे दिन दूकान को जा रहा था, तो उसे दरवाजे पर खड़ा पाया। उसने मेरी ओर प्यासे नयनों से देखा और मुस्करा दिया। इस मुस्कराहट में बिजली थी, मेरा धैर्य छूट गया। दूकान पर जी न लगा। सारा दिन साँझ की परीक्षा करता रहा। पल-पल गिनते दिन समाप्त हुआ और मैं घर को वापस लौटा। पैर भूमि पर न पड़ते थे। इस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, जैसे किसी को कुछ मिलने वाला हो। सत्यवान के मकान के पास पहुँचा तो पैर आपसे आप रुक गये, आँखें दरवाज़े पर जम गयीं। सहसा वह अन्दर से निकली और दरवाज़े के साथ लगकर खड़ी हो गयी। उसने मुँह से कुछ न कहा, परन्तु आँखों ने हृदय के पर्दे खोल दिये। इन आँखों में कैसा प्रेम था, कैसा कटाक्ष और उसके साथ स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा। चटनी में खटाई के साथ शक्कर मिलती हुई सी। मैं मतवाला-सा हो गया और झूमता-झामता घर पहुँचा, जैसे किसी शत्रु का दुर्ग जीत लिया हो।

कई दिन बीत गये। नयनों का प्रेम दृढ़ होता गया। पर उसे देख कर जी न भरता था, ओस की बूँदों से किसी की प्यास कब बुझी है? तृष्णा अपने पैर आगे बढ़ा रही थी। अन्तःकरण सावधान करता था,

जैसे भय के समय कोई लाल झंडी दिखा दे। परन्तु कामदेव उस ड्राइवर के समान परवाह न करता था, जिसने शराब पी ली हो। यह शराब साधारण न थी। वह शराब थी जो धर्म-कर्म सब चूल्हे में झोंक देती है और मनुष्य को बलात् भय के मुँह में डाल देती है। यह काम-वासना की शराब थी।

एक दिन बहुत रात गये घर लौटा। चित्त दुखी हो रहा था, जैसे कोई भारी हानि हो, परन्तु सावित्री दरवाज़े पर ही खड़ी थी। मैं गद्गद्-गद्गद् प्रसन्न हो गया, मेरा घाटा पूरा हो गया था। सारा क्रोध और दुःख दूर हो गया। सावित्री ने कहा—"आज आपको बड़ी देर हो गयी।"

परन्तु आवाज़ थरथरा रही थी।

मेरा कलेजा धड़कने लगा। शरीर पसीना-पसीना हो गया। छात्रा-वस्था में हमने सैकड़ों मुर्दे चीरे थे। उस समय भी यह अवस्था कभी न हुई थी। एक-एक अंग काँपने लगा। मैंने बड़ी कठिनाई से अपने आपको सँभाला और उत्तर दिया—"जी हाँ, कुछ मरीज़ देखने चला गया था। आप दरवाज़े पर खड़ी हैं क्या किसी की प्रतीक्षा है ?"

"हाँ, उनकी राह देख रही हूँ।"

"क्या आज कोई कवि सम्मेलन है।"

"कवि सम्मेलन तो नहीं। एक जलसे में गए हैं, वहाँ अपनी नवीन कविता पढ़नी है।"

"तो बारह बजे से पहले न लौटेंगे।"

सावित्री ने सतृष्ण नयनों से मेरी ओर देखा और मधुर कटाक्ष से ठंडी साँस भरकर कहा—"घर में जी नहीं लगता है।"

"अभी तो आठ ही बजे हैं।"

"जी चाहता है, घड़ी की सुइयाँ घुमा दूँ।"

मेरे पैर न उठते थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई सुमधुर नाटक हो रहा हो। परन्तु कोई देख न ले, इस विचार से पैर उठाने पड़े। हमें धर्म का विचार हो या न हो, परन्तु निन्दा का भय अवश्य होता है।

सावित्री ने मेरी ओर ऐसी आँखों से देखा, मानो कह रही है, "क्या तुम भी नहीं समझे ?"

मैं आगे बढ़ा, परन्तु हृदय पीछे छूटा जाता था। वह मेरे बस मे न था। घर जाकर चित्त उदास हो गया। सावित्री की मूर्ति आँखों में फिरने लगी। उसकी मधुर वाणी कानों में गूँजने लगी। मैं उसे भूल जाना चाहता था। मुझे डर था कि इस कूचे में पैर रख कर मैं बदनाम हो जाऊँगा। मुझ पर उँगलियाँ उठने लगेंगी। लोग मुझे भलमानस समझते है। यह करतूत मेरा सर्वनाश कर देगी। लोग चौंक उठेंगे। कहेंगे; कैसा भलामानस प्रतीत होता था, परन्तु पूरा गुरु-घंटाल निकला। प्रैक्टिस भी कम हो जायगी। वह विवाहिता स्त्री है। उसकी ओर मेरा हाथ बढ़ाना बहुत ही अनुचित है। परन्तु ये सब युक्तियाँ, सब विचार जल के बुदबुदे थे। जितने जल्दी बनते हैं उससे जल्दी टूट जाते हैं। वायु का हल्का-थपेड़ा उनका चिह्न तक मिटा देता है। मनुष्य कितना दुर्बल बेबस है !

दूसरे दिन मैं सत्यवान के घर पहुँचा, परन्तु पैर लड़खड़ा रहे थे: जैसे नया-नया चोर चोरी करने जा रहा हो। उस समय उसका हृदय किस प्रकार धड़कता है ? कहीं कोई देख न ले, मुँह का रंग भेद न खोल दे। कभी-कभी भलमनसी का विचार भी आ जाता है। पैर आगे रखता था, हृदय पीछे हट जाता था। एकाएक मैंने एक छलाँग भरी और अन्दर चला गया। इस समय होंठ सूख रहे थे।

सत्यवान ने मुझे देखा, तो कुर्सी से उछल पड़ा और बड़े प्रेम से मिला। देर तक बातें होती रहीं। सावित्री भी पास बैठी थी। मेरी आँखें बराबर उसके मुख पर लगी रहीं। पहले चोर था, अब डाकू बना। सावित्री की झिझक भी दूर हो गयी। वह बात-बात पर हँसती थी। अब उसे मेरी ओर देखने में संकोच न था। लज्जा के स्थान पर चपलता आ गई थी। वहाँ से चला तो प्रसन्न था, जैसे कि इन्द्र का सिंहासन मिल गया हो। तत्पश्चात् रास्ता खुल गया। दिन में कई बार सावित्री के दर्शन होने लगे। रात को दो-दो घण्टे उसके पास बैठा रहता हूँ। मेरी और सावित्री की आँखों-आँखों ही में मन मिल गया, पर सत्यवान को कुछ पता न था।

कल्पना-सागर से विचारों के मोती निकालने वाला कवि, बहुत दूर तक दृष्टि दौड़ाने वाला क्रान्तिदर्शी विद्वान् अपने सामने की घटना को नहीं समझता था। उसकी कविता दूसरों को जगाती थी, परंतु वह स्वयं सोया हुआ था। उस अनजान यात्री के समान जो नौका में बैठा दूर के हरे-हरे खेतों और ऊँची-ऊँची पहाड़ियों को देख-देखकर झूमता है, परन्तु नहीं जानता कि उसकी अपनी नाव भयानक चट्टान के निकट पहुँच रही है। सत्यवान् धीरे-धीरे विनाश की ओर बढ़ रहा था।

(८)

सावित्री

कितना अन्तर है! मणिराम की आँखें हृदय में आग लगा देती थीं। निकट होते हैं तो मैं इस प्रकार खिंची जाती, जैसे चुम्बक लोहे की सुई को खींच लेता है। कैसा भोला-भाला लगता था, मुख में जीभ न होगी। परन्तु मेरे पास आकर इस प्रकार चहचहाती है, ज्यों बुलबुल फूल की टहनी पर चहचहाता है। उसके बिना अब जी नहीं लगता था। मकान काटने को दौड़ता था। चाहती थी मेरे पास ही बैठे रहें। किसी ने मुँह से नहीं कहा, परन्तु आँखों से पता चला कि मुहल्ले की स्त्रियाँ सब कुछ समझ गई हैं। मेरी ओर देखतीं, तो मुस्कराने लगतीं। इतना ही नहीं, अब वह भी अपने विचारों से चौंक उठे। कवि थे, कुछ मूर्ख नहीं। बेपरवाह थे, पर बेसमझ न थे। अब हाथ मल-मलकर पछताने लगे। संसार जीतते थे, घर गवाँ बैठे। अब सदा उदासीन रहते थे। रात को सो नहीं सकते थे। बातचीत करती, तो काटने को दौड़ते। आँखों में लहू उतर आता था! न खाने की ओर ध्यान था, न पीने की ओर। कई-कई दिन स्नान न करते थे। अब मुझे उनके कपड़े बदलवाने का शौक न था, न उनके खाने-पीने का प्रबन्ध करती थी। कभी इन बातों में आनन्द आता, अब इनसे जी घबराने लगा। कुछ दिन पश्चात् प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'सरस्वती' में उनकी एक कविता प्रकाशित हुई। जिसका पहला पद था—

भयो क्यों अनचाहत सों संग

कविता क्या थी, उनकी अपनी अवस्था का चित्र। मेरी आँखों से आग बरसने लगी। शेरनी की नाई बिफरी हुई उनके सामने चली गयी और फिर बोली—"यह क्या कविता लिखने लगे हो अब ?"

उन्होंने मेरी ओर ऐसी आँखों से देखा, जो पत्थर को मोम कर देती, शोक और निराशा का पूरा नमूना थीं। धीरे से बोले—"क्या है ?"

"यह कविता पढ़ कर लोग क्या कहेंगे।"

"कवि जो कुछ देखता है, लिख देता है, इनमें मेरा दोष क्या है ?"

मैंने ज़रा पीछे हट कर कहा—"तुमने क्या देखा है ?"

"सावित्री ! मेरा मुँह न खुलवाओ ! अपने अंचल मे मुँह डाल कर देख लो। मुझसे कुछ छिपा नही।"

मैंने क्रोध से कहा—"गालियाँ क्यों देते हो ?"

"गालियाँ इससे लाख गुना अच्छी होती हैं।"

"तो तुम्हें मुझ पर संदेह है ?"

"संदेह होता तो रोना काहे का था ? अब विश्वास हो चुका। कान धोखा खा सकते हैं, परन्तु आँखें धोखा नहीं खातीं। मुझे यह पता न था कि मेरा घर इस प्रकार चौपट हो जायगा।"

मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। पर प्रकृति, जहाँ दुराचार को जाना होता है वहाँ निर्लज्जता को पहले भेज देती है। ढिठाई से बोली—"तुम कविता लिखो; तुम्हें किसी से क्या ?"

"घावों पर नमक छिड़कने आई हो ?"

"मेरी ओर देखते ही न थे। उस समय बुद्धि कहाँ चली गई थी"

"मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था, नहीं तो आज हाथ न मलता।"

परन्तु लोग तो तुम्हें वाहवाह कर रहे हैं। जिस पत्र में देखो, तुम्हारी ही चर्चा है, पढ़ कर प्रसन्न हो जाते होंगे।

यह सुन कर खड़े हो गये। इस समय उनकी आँखों में पागल की

सी लाली चमक रही थी। चिल्ला कर बोले—"अपनी मौत को न बुलाओ, मैं इस समय पागल हो रहा हूँ।"

"तो क्या मार डालोगे ? बहुत अच्छा, यह भी कर डालो। अपने जी की इच्छा पूरी कर डालो।"

उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा; जिस प्रकार सिंह अपने आखेट को मारने से पहले देखता है, और झपट कर आलमारी की ओर बढ़े। मेरा कलेजा धड़कने लगा, दौड़ कर बाहर निकल गयी। मेरा विचार था, वे मेरे पीछे दौड़ेंगे, इसलिए घर के सामने मैदान में जा खड़ी हुई। इस समय मेरी साँस फूली हुई थी, मृत्यु को सामने देख चुकी; परन्तु वे बाहर न आये। थोड़ी देर पीछे 'दन' का शब्द सुनाई दिया। मैं दौड़ती हुई अन्दर चली गयी। देखा कि फ़र्श पर तड़प रहे थे। मृत्यु का दृश्य देख कर मैं डर गयी। परतु मुझे दुःख नहीं हुआ। मुक़दमे की लपेट में न आ जाऊँ, यह चिन्ता अवश्य हुई।

दो मास बीत गये। मैं अपने आँगन में बैठी मणिराम के लिए नेक-टाई बुन रही थी। मैंने लोकाचार की परवाह न करके उनसे विवाह करने का निश्चय कर लिया था। लोग इस समाचार से चौंक उठे थे। परन्तु मैं उनके मरने से प्रसन्न हो रही थी, समझती थी, जीवन को आनन्द अब आयेगा। अचानक नौकर ने आकर डाक मेरे सामने रख दी। इसमें एक पैकेट भी था। मैंने पहले उसे खोला। यह मेरे मृतक पति की कविताओं का संग्रह था। मैंने एक-दो कविताएँ पढ़ीं। हृदय में हलचल मच गयी कैसे ऊँचे विचार थे, कैसे पवित्र भाव, संसार की मलिनता से रहित। इनमें न छल था, न कपट था। इनमें आध्यात्मिक सुख था, शान्ति थी, माधुरी थी। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। एकाएक तीसरे पृष्ठ पर दृष्टि गयी। यह समर्पण का पृष्ठ था। मेरा लहू जम गया। पुस्तक मेरे नाम समर्पित की गई थी। एक-एक शब्द से प्रेम की लपटें आ रही थीं। परन्तु इस प्रेम और मणिराम के प्रेम में कितना अन्तर था। एक चन्द्रमा की चाँदनी के समान शीतल था, दूसरा अग्नि के समान दग्ध करने वाला। एक समुद्र की नाईं गहन-गम्भीर, दूसरा पहाड़ी नाले के समान वेगवान ! एक सचाई था;

परन्तु निःशब्द, दूसरा झूठा; पर बड़बोला। मेरी आँखों के सामने से पर्दा उठ गया। सतीत्व के उच्च शिखर से कहाँ गिरने को थी, यह मैंने आज अनुभव किया। उठते हुए पैर रुक गये। मैंने पुस्तक को आँखों से लगा लिया और रोने लगी।

इतने में मणिराम अन्दर आये। मुख आने वाले आनन्द की कल्पना से लाल हो रहा था। उनके हाथ में एक बहुमूल्य माला थी, जो उन्होंने मेरे लिए बम्बई से मँगवाई थी। वह दिखाने आये। मुझे रोते देखकर ठिठक गये और बोले—"क्यों रो रही हो?"

"मेरी आँखें खुल गई हैं।"

"यह अपनी माला देख लो। कल विवाह है।"

"अब विवाह न होगा।"

"सावित्री, पागल हो गई हो क्या?"

"परमात्मा मुझे इसी प्रकार पागल बनाये रखे।"

मणिराम आगे बढ़ा। परन्तु मैं उठकर पीछे हट गयी और दरवाजे की ओर इशारा करके बोली—"उधर।"

उस रात मुझे नींद आयी, जैसी इससे पहले कभी न आयी थी। मैंने पति को ठुकरा दिया था, परन्तु उसके प्रेम को न ठुकरा सकी। मनुष्य मर जाता है, उसका प्रेम जीता रहता है।

उसने कहा था

[चंद्रधर शर्मा गुलेरी]

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की ज़बान के कोड़ों से जिसकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृत-सर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े के पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरह खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगु-लियों के पैरों को चीथ कर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक के सीधे चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तंग चक्करदार गलियों में हर एक लढ्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसाजी', 'हटो भाई जी, 'ठहरना भाई' 'आने दो लाला-जी', 'हटो बाछा' कहते हुए सफ़ेद फेटो, खच्चरों और बतखों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मज़ाल है कि 'जी' और 'साहब' विना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं; चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीणे जोगिये, हट जा करमा वालिए; हट जा पुतां प्यारिए; बच जा, लम्बी उमर वालिए! समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है?—बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान

पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ? दूकानदार एक परदेशी से गुंथ रहा था जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ है?"

"मगरे में, और तेरे?"

"माँझे में, यहाँ कहाँ रहती है?"

"अतरसिंह की बैठक में, मेरे मामा होते हैं।"

"मैं मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार में है।"

इतने में दूकानदार निबटा और इनको सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—"तेरी कुड़माई[1] हो गयी?" इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कहकर दौड़ गयी और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, या दूधवाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—"तेरी कुड़माई हो गयी?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—"हाँ, हो गई।"

"कब?"

"कल, देखते नहीं यह रेशम से काढ़ा हुआ सालू[2]।"

लड़की भाग गयी। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले[3] की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहा- कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पायी। तब कहीं घर पहुँचा।

---

१ सगाई।

२ ओढ़नी, ३ खोमचेवाला।

(२)

"राम राम, यह भी कोई लड़ाई है ! दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गयीं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ़ ऊपर से, पिंडलियों तक कीच में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखता नही—घंटे-दो-घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पचीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफ़ा या कुहनी निकल गई, तो चटाक् से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लिपटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह तीन दिन और हैं ! चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ़' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे; उस फिरंगी मेम के बाग़ में—मखमल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते है दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जरमनों को अकेला मार कर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन के गोले फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था।

पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों ?" सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कुराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफ़सर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ़ बढ़ गये तो क्या होगा ?"

"सूबेदार जी सच है।" लहनासिंह बोला—"पर करें क्या ? हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ़ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

"उदमी उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वज़ीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। लहनासिंह, शाम हो गई है; खाई के दरवाज़े का पहरा बदल दे।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ, देश क्या है स्वर्ग। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस गुना जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ी होराँ[1] को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—"

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा अब बोधासिंह कैसा है ?"

"अच्छा है।"

---

१. स्त्री का आदरवाचक शब्द।

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है और 'निमोनियाँ' से मरने वालों को मुरब्बे[1] नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ा कर कहा—"क्या मरने-मराने की बात लगाई है? मरे जर्मनी और तुरक।"

"हाँ भाइयो, कुछ गाओ।"

× × ×

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गायेंगे, पर सारी खन्दक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात गई है; अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह से दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहना-सिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह लगा कर पूछा—"कहो, कैसे हो?" पानी पाकर बोधा बोला—"कँपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार तोड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

---

१. नई नहरों के पास वर्ग-भूमि।

"अच्छा मेरी जरसी पहन लो :"

"और तुम ?"

"मेरे पास सिगड़ी है, मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।"

"न, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए...."

"हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है! विलायत से मेम बुन-बुनकर भेज रही है। गुरु उनका भला करें।" यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो ?"

"और नहीं झूठ ?" यों कह कर नाहीं करते बोधा को उसने ज़बरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और ज़ीन का कुरता भर पहन कर पहरे पर खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई—"सूबेदार हज़ारासिंह!"

"कौन ? लपटन साहब। हुकुम हुजूर!" कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो इसी दम धावा करना होगा। मील भर दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मनी खाई है। उसमें पचास से ज्यादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म!"

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा, तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बापू सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गये और जेब से

सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

"लो तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया! मुँह का भाव छिपा कर बोला—"लाओ, साहब!" हाथ आगे करते ही सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह क़ैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौक़ा मिल गया है। लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे?

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, यह देश पसन्द नहीं?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मज़े यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जग-धारी ज़िले में शिकार करने गये थे—हाँ, हाँ—वहीं जब आप खोते[1] पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था? "बेशक, पाजी कहीं का"—"सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आप की एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे से निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मज़ा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगाएँगे। हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया"—ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के तो होंगे!"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ।"—कह कर लहनासिंह

---

१ गधे।

खन्दक में घुसा। अब उसे संदेह नहीं रहा था और उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

"कौन ? वज़ीरासिंह ?"

"हाँ, क्यों लहना ? क्या कयामत आ गयी ? ज़रा तो आँख लगने दी होती।"

(४)

"होश में आओ। कयामत आई है और लपटन की वर्दी पहन कर आई है।"

"क्या ?"

"लपटन साहब या तो मारे गये हैं या क़ैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं। सौहरा साफ़ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं····"

"ऐसी-तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह का जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफ़सर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो—तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने

देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेर बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह ख़न्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ़ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुप्थी पर रखने····

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहना सिंह ने एक कुन्दा साहब के गर्दन पर मारा और साहब "आह! माई गॉड[1]" कहते हुए चित्त हो गये। लहना-सिंह ने तीनों गोले बीन कर ख़न्दक के बाहर फ़ेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफ़े और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधारी के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ़ उर्दू कहाँ सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिना "डेम" के पाँच लफ़्ज भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानों जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो, पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मांचा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से

---

१ हाय मेरे राम

विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायेंगे तो गो-हत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पौल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूंड़ दी थी और गाँव के बाहर निकाल कर कहा कि "जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो····!"

साहब की जेब से पिस्तौल चली और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरीमार्टिनी के दो फ़ायरों ने साहब की कपाल क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—"क्या है?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि एक भड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया, औरों से सब हाल कह दिया। बन्दूकें लेकर सब तैयार हो गये। लहना ने साफ़ा फाड़कर घाव के दोनों तरफ़ पट्टियाँ कस कर बाँधीं। घाव माँस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्ला कर खाई में घुस पड़े। सिखों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था—वह खड़ा था, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुस आते थे। थोड़े से मिनटों में वे····"

अचानक आवाज़ आई, 'वाह, गुरुजी दी फ़तह! वाह गुरुजी दा खालसा! और धड़ाधड़ बन्दूकों के फ़ायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौक पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सुबेदार हज़ारा सिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—'अकाल सिक्खां दी फौज आयी। वाह गुरुजी दी फ़तह! वाह गुरुजी दी खालसा!! सत्त सिरी अकाल पुरुष!!!' और

लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह के पसली में एक गोली लगी। उसने घाव खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाक़ी साफ़ा कस कर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि दूसरा घाव —भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती! वजीरासिह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से मारा हाल सुन और कागज़ात पाकर, उसकी तुरन्त-बुद्धि को सराह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफ़ोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डॉक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं जो कोई डेढ़ घन्टे के अंदर-अंदर वहाँ आ पहुँचीं। फ़ील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँध कर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रखी गयीं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही, पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह भी गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते न थे। यह देख लहना ने कहा—

"तुम्हें बोधा की क़सम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना और जर्मन मुर्दों के लिए

ताई

[विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक']

(१)

"ताऊजी, हमें लैलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे"—कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाहें फैलाकर कहा—"हाँ बेटा, ला देंगे।" उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूम कर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी?"

बालक बोला—"उनमें बैठ कर बर्ली दूल जायँगे। हम बी जायँगे, चुन्नी को बी ले जायँगे। बाबूजी को नहीं ले जायँगे। हमें लेलगाड़ी नहीं ला देते। ताऊजी तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जायँगे।"

बाबू—"और किसे ले जायगा?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बछ और किसी को नहीं ले जायँगे?"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धाङ्गिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"अरे अपनी ताई को नहीं ले जायेगा?"

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताईजी उस समय कुछ चिढ़ी हुई सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जायेंगे।"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊजी ही को ले जा, मेरे ऊपर दया रख।"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जायगा?"

बालक—"ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं कलतीं।"

बाबू—"जो प्यार करें तो ले जायगा।"

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताई के भाव को देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—"क्यों रे बोलता नहीं? ताई प्यार करें, तो रेल पर बिठा कर ले जायगा?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी के पास ले जाकर उनसे बोले—"लो, इसे प्यार कर लो तुम्हें भी ले जायगा।" परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की वह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनक कर बोलीं—"तुम्ही रेल पर बैठ कर जाओ, मुझे नहीं जाना है।"

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बैठाने की चेष्टा करते हुए बोले—"प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नहीं बिठावेगा। क्यों रे मनोहर?"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में तो चोट नहीं लगी; पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया। चुमकार-पुचकार कर चुप किया और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसा तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया। जो उसके चोट लग जाती तो?"

रामेश्वरी मुँह मटका कर बोलीं—"लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे? आप ही तो मेरे ऊपर डालते थे और आप ही अब ऐसी बातें करते हैं।"

बाबू साहब कुढ़ कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं ?"

रामेश्वरी—"और नहीं किसे कहते हैं ? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुख-सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कोई परवा ही नही. अपनी चुहल से काम है।"

बाबू—"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुन कर तो चाहे जैसा जी हो प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है ?"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और, होने को होता है, मगर वैसा बच्चा भी तो हो। पराये धन से भी कहीं घर भरता है।"

बाबू साहब कुछ देर चुप रह कर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नही समझता कि अपना धन किसे कहेंगे।"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं—"बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बातें अच्छी नही लगतीं हमारे भाग ही फूटे हैं। नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारी चलन तो दुनियाँ से निराली है। आदमी सन्तान के लिए न जानें क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते है; पर तुम्हें इन बातों से क्या काम ? रात-दिन भाई भतीजों में मगन रहते हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—"पूजा-पाठ व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।"

श्रीमती जी कुछ-कुछ रुँआसे स्वर में बोलीं—"इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रखा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायँ तो काम कैसे चले ? सब विश्वास पर बैठे रहे, आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे !"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं। अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान के अधीन है।"

बाबू साहब हँस कर बोले—"तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री को भी क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया-भर के झूठे और धूर्त हैं। झूठ बोलने ही की रोटियां खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनक कर बोली—"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पंडित कुछ अपनी तरफ से बना कर कहते ही नहीं हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है तो वे भी झूठे हैं। अँगरेज़ी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं! जो बातें बाप-दादे के जमाने से चली आई हैं, उन्हें भी झूठा बताते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात तो समझती नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो, मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो, परन्तु ज्योतिषयों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठे और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—"हूँ, सब झूठे ही हैं; तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो। अच्छा एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु क्या किया जाय? जब नहीं है और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ? इसके सिवा, जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द

उसकी बाल-क्रीड़ा मे आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।"

रामेश्वरी कुढ़ कर बोलीं—"तुम्हारी समझ की मैं क्या कहूँ? इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ, भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साहब हँसकर बोले—"अरे तुम भी कहाँ से क्षुद्र बातें लायीं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गये हैं, उन सब का नाम क्या उनकी सन्तान की बदौलत चल रहा है, सच पूछो, तो सन्तान से जितनी नाम चलने की आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की भी सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है; जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे! उनके सन्तान कहाँ हैं। पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और अभी न जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती!"

बाबू—"मुक्ति पर मुझे विश्वास नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम? यदि मुक्ति होना भी मान लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवालों की मुक्ति हो ही जाती है? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है। ये जितने पुत्रवाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोली—"अब तुमसे कौन बकवास करे। तुम तो अपने सामने किसी को मानते ही नहीं।"

(३)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता

है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु, भद्दी-से-भद्दी और बिलकुल काम में आने वाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपना समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो; कितनी ही उपयोगी क्यों न हो; कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता; इसलिए कि वह वस्तु, उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आने वाली हो, नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है, इसलिये कि वह अपनी चीज़ है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज़ से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपना बनाकर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है; और प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा है। ये कभी पृथक नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अंतर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं, परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींच कर इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लाने वाला कोई नहीं। इसीलिए उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नही दूसरे के है, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थीं कि उनके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते है, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थीं। पास उनकी देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़-दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेल को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को

उसकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।"

रामेश्वरी कुढ़ कर बोलीं—"तुम्हारी समझ की मैं क्या कहूँ? इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ, भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साहब हँसकर बोले—"अरे तुम भी कहाँ से क्षुद्र बातें लायीं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गये हैं, उन सब का नाम क्या उनकी सन्तान की बदौलत चल रहा है, सच पूछो, तो सन्तान से जितनी नाम चलने की आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की भी सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है; जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे! उनके सन्तान कहाँ हैं। पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और अभी न जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती!"

बाबू—"मुक्ति पर मुझे विश्वास नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम? यदि मुक्ति होना भी मान लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवालों की मुक्ति हो ही जाती है? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है। ये जितने पुत्रवाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोली—"अब तुमसे कौन बकवास करे। तुम तो अपने सामने किसी को मानते ही नहीं।"

(३)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता

है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी-से-भद्दी और बिलकुल काम में आने वाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपना समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो; कितनी ही उपयोगी क्यों न हो; कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता; इसलिए कि वह वस्तु, उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आने वाली हो, नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है, इसलिये कि वह अपनी चीज़ है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज़ से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपना बनाकर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है; और प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा है। ये कभी पृथक नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अंतर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं, परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींच कर इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लाने वाला कोई नहीं। इसीलिए उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह यह देखती थीं कि उनके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते है, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थीं। पास उनकी देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़-दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेल को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को

उन बच्चों का खेलना-कूदना, बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हें-नन्हें मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गयीं। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उस समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठ कर चली गयी।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी।" कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़प कर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, और बैठ कर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भौहें तन गयीं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये, और मुसकरा कर बोले—"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं। इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी उनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमजोरी पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी

आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गयी, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसीलिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग की तीक्ष्ण गंध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़ कर मन में कहा—"इन्हे मौत भी नहीं आती। मर जायँ, पाप कटे! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।"

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देख कर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्ही को मुबारक रहे! निगोड़े आप ही आ-आ के घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना ही पड़ता है। अभी परसों ज़रा यों ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण है, न यों चैन न वों चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुन कर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी-खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है। न जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा। पर इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा। तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्रिय हैं।"

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों द्वारा निकालने लगी।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी से द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वह पति की नज़र से गिरती जा रही है, तब उनके हृदय में बड़ा तूफ़ान उठा। उन्होंने यह सोचा—पराये बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बच्चे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं। दुनिया मरती जाती है, पर दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये। न ये होते, न मुझे यह दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घी के दिए जलाऊँगी। इन्होंने मेरा घर सत्यानाश कर रक्खा है।

(४)

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं; वही अपनी निज की संतान का अभाव, पति के भाई की संतान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार स्वयं उन्हीं को कष्टदायक प्रतीत होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए टहलने लगीं।

वह टहल ही रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देख कर उनकी भृकुटी चढ़ गयी, और वह छत की चहारदिवारी पर हाथ रख कर खड़ी हो गयीं।

संध्या का समय था। आकाश में रंग-बिरंगी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कट कर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़ कर रामेश्वरी के पास आया, और उनकी टाँगों में लिपट कर बोला—"ताई, हमें पतंग मंगा दो।"

रामेश्वरी ने झिड़क कर कहा—"चल, हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण स्वर में कहा—"ताई, पतंग मँगा दो; हम भी उड़ायेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन ही मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता तो आज मुझसे बढ़कर भाग्यवान स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़ा-मरा कितना सुन्दर है, कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है! यही जी चाहता है कि उठा कर छाती से लगा लें।

यह सोच कर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देख कर बोला—"तुम हमें पतंग नहीं मँगवा दोगी, तो ताऊजी से कह कर तुम्हें पिटवायेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुँह क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़क कर बोलीं—"जा, कह दे अपने ताऊजी से। देखें वह मेरा क्या कर लेंगे!"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया, और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊजी के दुलार का फल है कि बालिश्त-भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कट कर उसी छत की ओर आयी और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गयी। छत के चारों ओर चहारदिवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी थीं, केवल वहीं पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस द्वार से सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़ कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं।

मनोहर उनके पास से होकर छज्जे पर चला गया, और उनसे दो फ़ीट की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्झे पर से होती हुई नीचे घर के आँगन में जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रख कर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देख वह प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा; परन्तु घूमते समय मुडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुडेर आ गयी। वह उसे पकड़ कर लटक गया, और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया "ताई!" रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा। उसके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो; सदा का पाप कट जायगा। यही सोचकर वह एक क्षण के लिए रुकीं। इधर मनोहर के हाथ मुंडेर पर फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देख कर चिल्लाया—"अरी ताई!" रामेश्वरी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देख कर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुडेर छूट गयी। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मार कर छज्जे पर से गिर पड़ी।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह ज़ोर से चिल्ला उठतीं, और कहती—"देखो-देखो, वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ, दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी वह कहतीं—"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ हाँ, मैं चाहती तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।" इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करतीं।

मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है?"

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है।"

रामेश्वरी—"उसे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी, हिचकियों में गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से द्वेष और घृणा नहीं करती और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

आकाश-दीप

[जयशंकर प्रसाद]

"बन्दी !"

"क्या है ? सोने दो ।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो ।"

"फिर अवसर न मिलेगा ।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता ।"

"आँधी की सम्भावना है, यही अवसर है । आज मेरे बन्धन शिथिल हैं ।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं ।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जायगा ! पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ ।"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं । दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे । पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया । दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा । लहरों के धक्के एक दूसरे को स्पर्श से पुलकित करते थे । मुक्ति की आशा—स्नेह का असम्भावित आलिंगन । दोनों ही अन्धकार में मुक्त हो गये । दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से, उसको गले लगा लिया । सहसा उस बन्दी ने कहा—"यह क्या ? तुम स्त्री हो ?"

"क्या स्त्री होना कोई पाप है ?" अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा ।

"शस्त्र कहाँ है ? तुम्हारा नाम ?"

"चम्पा ।"

आकाश-दीप

[जयशंकर प्रसाद]

"बन्दी !"

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ी शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की सम्भावना है, यही अवसर है। आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जायगा ! पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ।"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक दूसरे को स्पर्श से पुलकित करते थे। मुक्ति की आशा—स्नेह का असम्भावित आलिंगन। दोनों ही अन्धकार में मुक्त हो गये। दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से, उसको गले लगा लिया। सहसा उस बन्दी ने कहा—"यह क्या ? तुम स्त्री हो ?"

"क्या स्त्री होना कोई पाप है ?" अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है ? तुम्हारा नाम ?"

"चम्पा।"

तारक-खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकाल कर फिर लुढ़कते हुए, बन्दी के समीप पहुँच गयी। सहसा पोत से पथ-प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा—"आँधी।"

आपत्ति-सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बन्दी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बन्दी लुढ़क कर उस रज्जु के पास पहुँचा जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर क्रन्दन-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतन्त्र थी। उस संकट में भी दोनों बन्दी खिलखिला कर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

(२)

अनन्त जलनिधि में ऊषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल दृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शान्त था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बन्दी मुक्त हैं।

नायक ने कहा—"बुद्धगुप्त ! तुमको मुक्त किसने किया ?"

कृपाण दिखा कर बुद्धगुप्त ने कहा—"इसने।"

नायक ने कहा—"तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊँगा।"

"किसके लिए ? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा—नायक ! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।

"तुम ? जलदस्यु बुद्धगुप्त ? कदापि नहीं।"—चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

"तो तुम द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वही

तारक-खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकार में मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी! एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकाल कर फिर लुढ़कते हुए, बन्दी के समीप पहुँच गयी। सहसा पीछे से पथ-प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा—"आँधी।"

आपत्ति-सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बन्दी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बन्दी लुढ़क कर उस रज्जु के पास पहुंचा जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर क्रन्दन-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतन्त्र थी। उस संकट में भी दोनों बन्दी खिलखिला कर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

(२)

अनन्त जलनिधि में ऊषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल दृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शान्त था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बन्दी मुक्त हैं।

नायक ने कहा—"बुद्धगुप्त! तुमको मुक्त किसने किया?"

कृपाण दिखा कर बुद्धगुप्त ने कहा—"इसने।"

नायक ने कहा—"तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊँगा।"

"किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभक्त अतल जल में होगा—नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।

"तुम? जलदस्यु बुद्धगुप्त? कदापि नहीं।"—चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

"तो तुम द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वही

स्वामी होगा।''—इतना कहकर बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गति वाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़ कर अपने दोनों हाथ स्वतन्त्र कर लिये। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये, परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुँकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों मे बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण-भिक्षा माँगने लगीं।

बुद्धगुप्त ने कहा—''बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं ?''

''मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात न करूँगा।''

बुद्धगुप्त ने छोड़ दिया।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-बिन्दु विजय-तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—''हम लोग कहाँ होंगे ?''

''बालीद्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का कम आना-जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।''

''कितने दिनों में हम लोग पहुँचेंगे ?''

''अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा।''

सहसा नायक ने नाविकों को डाँड़ लगाने की आज्ञा दी और स्वयं पतवार पकड़ कर बैठ गया। बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा—''यहाँ एक जलमग्न शैलखण्ड है। सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है।''

(३)

"तुम्हें इन लोगों ने बन्दी क्यों बनाया ?"

"वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ ?"

"जाह्नवी के तट पर, चम्पा-नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं पिता के साथ नाव पर रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जल-समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निसहाय हूँ। अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाई। उसी दिन से बन्दी बना दी गई।"—चम्पा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिपि का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बन कर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी ?"

"मै अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।"—चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश्य विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर विलम्बमयी राग-रंजित सन्ध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक वरुण-बालिका! यह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नयी वस्तु का पता चला। वह थी—कोमलता!

उसी समय नायक ने कहा—"हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये!"

बेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। माँझी भी उतरे। बुद्धगुप्त ने कहा—जब इसका कोई नाम नहीं है तो हम लोग इसे चम्पा-द्वीप कहेंगे।"

स्वामी होगा।"—इतना कहकर बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गति वाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़ कर अपने दोनों हाथ स्वतन्त्र कर लिये। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये, परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुँकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण-भिक्षा माँगने लगीं।

बुद्धगुप्त ने कहा—"बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं ?"

"मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ। मै विश्वासघात न करूँगा।"

बुद्धगुप्त ने छोड़ दिया।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-विन्दु विजय-तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—"हम लोग कहाँ होंगे ?"

"बालीद्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का कम आना-जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।"

"कितने दिनों में हम लोग पहुँचेंगे ?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा।"

सहसा नायक ने नाविकों को डाँड़ लगाने की आज्ञा दी और स्वयं पतवार पकड़ कर बैठ गया। बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा—"यहाँ एक जलमग्न शैलखण्ड है। सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है।"

(३)

"तुम्हें इन लोगों ने बन्दी क्यों बनाया ?"

"वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने ।"

"तुम्हारा घर कहाँ ?"

"जाह्नवी के तट पर, चम्पा-नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ । पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे । माता का देहावसान हो जाने पर मैं पिता के साथ नाव पर रहने लगी । आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है । तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मार कर जल-समाधि ली । एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निसहाय हूँ । अनाथ हूँ । मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया । मैंने उसे गालियाँ सुनाई । उसी दिन से बन्दी बना दी गई ।"—चम्पा रोष से जल रही थी ।

"मैं भी ताम्रलिपि का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा ! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बन कर जीवन बिताता हूँ । अब तुम क्या करोगी ?"

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी । वह जहाँ ले जाय !"—चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं । किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे । धवल अपांगों में बालकों के सदृश्य विश्वास था । हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया । उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी । समुद्र-वक्ष पर विलम्बमयी राग-रंजित सन्ध्या थिरकने लगी । चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे । दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक वरुण-बालिका ! यह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा । उसे एक नयी वस्तु का पता चला । वह थी—कोमलता !

उसी समय नायक ने कहा—"हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये !"

बेला से नाव टकराई । चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी । माँझी भी उतरे । बुद्धगुप्त ने कहा—जब इसका कोई नाम नहीं है तो हम लोग इसे चम्पा-द्वीप कहेंगे ।"

चम्पा हँस पड़ी ।

(४)

पाँच बरस बाद—

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे थे । चन्द्र के उज्ज्वल-विजय पर अन्तरिक्ष में शरद लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया ।

चम्पा के एक उच्च सौंध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी । बड़े यत्न से अभ्रक की मंजूषा में दीप धर कर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची । वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा । भोली-भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं । डोरी धीरे-धीरे खींची गई । चम्पा की कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रों से हिलमिल जाय; किन्तु वैसा होना असम्भव था । उसने आशा-भरी आँखें फिरा लीं ।

सामने जल-राशि का रजत शृङ्गार था । वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालाएँ बना रही थीं और वे मायाविनी छलनायें अपनी हँसी का कलनाद छोड़ कर छिप जाती थीं । दूर-दूर से धीवरों की वंशी की झनकार उनके संगीत-सा मुखरित होता था । चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जलराशि में उनके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त-व्यस्त था । वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था । वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई । किसी को पास न देख कर पुकारा—

"जया !"

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई । जंगली थी । नील नभोमंडल के मुख में शुभ्र नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते । वह चम्पा को रानी कहती, बुद्धगुप्त की आज्ञा थी ।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो !" चम्पा ने कहा—"जया चली गई ।"

दूरागत पवन चम्पा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था । उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी । आज न जाने क्यों वह बेसुध थी । एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर उसे चमत्कृत कर

चम्पा हँस पड़ी।

(४)

पाँच बरस बाद—

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे थे। चन्द्र के उज्ज्वल-विजय पर अन्तरिक्ष में शरद लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चम्पा के एक उच्च सौंध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की मंजूषा में दीप धर कर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली-भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं। डोरी धीरे-धीरे खींची गई। चम्पा की कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रों से हिलमिल जाय; किन्तु वैसा होना असम्भव था। उसने आशा-भरी आँखें फिरा लीं।

सामने जल-राशि का रजत शृङ्गार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालाएँ बना रही थीं और वे मायाविनी छलनायें अपनी हँसी का कलनाद छोड़ कर छिप जाती थीं। दूर-दूर से धीवरों की वंशी की झनकार उनके संगीत-सा मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जलराशि में उनके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त-व्यस्त था। वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देख कर पुकारा—
"जया!"

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। जंगली थी। नील नभोमंडल के मुख में शुभ्र नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चम्पा को रानी कहती, बुद्धगुप्त की आज्ञा थी।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो!" चम्पा ने कहा—
"जया चली गई।"

दूरागत पवन चम्पा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर उसे चमत्कृत कर

दिया। उसने फिर कहा—"बुद्धगुप्त !"

"बावली हो क्या। यहां बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यही काम करना है ?"

"क्षीर-निधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाश-दीप जलवाऊँ ?"

"हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो ! उसको, जिसको तुमने भगवान मान लिया है ?"

"हाँ, वह भी कभी भटकते हैं : भूलते हैं; नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते ?"

"तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पा रानी ?"

"मुझे इस बन्दी-गृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे अधिकार में है, महानाविक ! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लाद कर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे। इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में—तारिकाओं की मधुर ज्योति में—थिरकती थी बुद्धगुप्त ! उस विजन अनन्त में जब माँझी सो जाते थे; दीपक बुझ जाते थे। हम तुम परिश्रम से थक कर पालों में शरीर लपेट कर एक दूसरे का मुँह क्यों देखते थे, वह नक्षत्रों की मधुर छाया...."

"तो चम्पा ! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

"नहीं नहीं, तुमने दस्युवृत्ति तो छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश-दीप पर व्यंग कर रहे हो नाविक ! उस प्रचंड आँधी में प्रकाश की एक-एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे ! मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे—मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में जलाकर भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती—'भगवान् !

मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अन्धकार में ठीक पथ पर ले चलना।' और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते—'साधवी! तेरी प्रार्थना ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है।' वह गद्गद् हो जाती। मेरी माँ, आह नाविक! यह उसी की पुण्य स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु! हट जाओ!" सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रङ्ग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। ठठाकर हँस पड़ा।

"यह क्या चम्पा! तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।" कहता हुआ चला गया! चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

(५)

निर्जन समुद्र के उपकूल में बेला से टकरा कर लहरें बिखर जाती हैं। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शान्त गम्भीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

चम्पा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गयीं। तरङ्ग से उठते पवन ने उसके वसन को अस्त-व्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी-सी नौका आयी। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चम्पा मुग्ध-सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

"इतना जल! इतनी शीतलता! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी? नहीं। तो जैसे बेला से चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ? या जलते हुए स्वर्ण-गोलक के सदृश्य अनन्त जल में डूब कर बुझ जाऊँ?" चम्पा के देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिम्ब धीरे-धीरे सिन्धु में, चौथाई—आधा फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ-निःश्वास लेकर चम्पा ने मुँह फेर लिया। देखा तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्त ने झुक कर हाथ बढ़ाया। चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गयी। दोनों पास-पास बैठ गये।

"इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जल-

मग्न शैलखंड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती चम्पा, तो ?"

"अच्छा होता बुद्धगुप्त ! जल में बन्दी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है !"

"आह चम्पा, तुम कितनी निर्दयी हो ! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो; वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिए नए द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नयी प्रजा खोज सकता है, नए राज्य बना सकता है। उसकी परीक्षा लेकर देखो तो....। कहो चम्पा ! वह कृपाण से अपना हृदय पिंड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे !" महानाविक—जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था, घुटनों के बल चम्पा के सामने छलछलाई आँखों से बैठा था।

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली, विस्तृत जल-देश में नील पिंगल संध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतलछाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नील जाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नीलकमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिये। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का। किन्तु उस परिरम्भ में सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

"बुद्धगुप्त ! आज मैं अपना प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबो देती हूँ ! हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया !"—चमक कर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

"तो आज मैं विश्वास करूँ, मैं क्षमा कर दिया गया।"—आश्चर्य-कंपित कंठ से महानाविक ने पूछा।

"विश्वास ? कदापि नहीं बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया; तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुमसे घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ।"—चम्पा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तम से अपनी आँखें बन्द करने लगी

थी! दीर्घ निःश्वास लेकर महानाविक ने कहा—"इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा चम्पा! यहीं उस पहाड़ी पर। सम्भव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय!"

(६)

चम्पा के दूसरे मार्ग में एक मनोरम शैलमाला थी। बहुत दूर तक सिंधु-जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैलमाला पर चम्पा के आदि निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चम्पा को वनदेवी-सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक और नाविकों की श्रेणी में वनकुसुम-विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चम्पा के नाविकों को सावधान करने के लिये सुदृढ़ दीप-स्तंभ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तंभ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से, सहायता देकर, चम्पा को उसने उतारा। दोनों ने भीतर पदार्पण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम-भूषण से सजी वन-बालाएँ फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

दीप-स्तंभ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चम्पा ने जया से पूछा—"यह क्या है जया?—इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लायीं!"

"आज रानी का ब्याह है न?" कह कर जया ने हँस दिया।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोर कर चम्पा ने पूछा—"क्या यह सच है?"

"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चम्पा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती में दबाए हूँ।"

"चुप रहो महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा।"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त वह दिन कितना

सुन्दर होता; वह क्षण कितना स्पृहणीय ! आह ! तुम इस निठुरता में कितने महान् होते !"

जया नीचे चली गई। स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुद्धगुप्त और चम्पा एकांत में एक दूसरे के सामने बैठे थे।

बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिये। उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा—"चम्पा ! हम लोग जन्मभूमि—भारतवर्ष से इतनी दूर इन निरीह प्राणियों में इन्द्र और शची के समान पूजित हैं। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किये है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश ! वह महिमा की प्रतिमा। मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता ? जानती हो, इतना महत्व प्राप्त करने पर भी कंगाल हूँ। मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकांत-मणि की तरह द्रवित हुआ।"

"चम्पा ! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंग पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुसकराने लगी। पशु-बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और कांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।"

"चलोगी चम्पा ! पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लाद कर राजरानी-सी जन्मभूमि के अंक में ? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम भारत के लिये प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिन्धु की लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत-पुंज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देंगी। आह चम्पा ! चलो।"

चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिए। किसी आकस्मिक झटके ने पलभर के लिये दोनों अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने कहा—"बुद्धगुप्त ! मेरे लिये सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्जवलित

नहीं। सब मिला कर मेरे लिए एक शून्य हैं। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिये, और मुझे छोड़ दो। इन भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिये।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चम्पा! यहाँ रह कर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँगा—इसमें सन्देह है। आह! किन लहरों में मेरा विनाश हो जाय!"—महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा—"तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तम्भ पर से आलोक जला कर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।"

(७)

एक दिन स्वर्ण रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप-स्तम्भ पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा का उपकूल छोड़कर पश्चिम-उत्तर की ओर महा-जल-व्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

यह कितनी शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आजीवन उस दीप-स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन; द्वीप-निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि सदृश उसकी पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

———

जाह्नवी

[जैनेन्द्र कुमार]

आज तीसरा रोज़ है। तीसरा नहीं, चौथा रोज़ है। वह इतवार की छुट्टी का दिन था। सबेरे उठा और कमरे से बाहर की ओर झाँका तो देखता हूँ, मुहल्ले के एक मकान की छत पर काँव-काँव करते हुए कौओं से घिरी हुई एक लड़की खड़ी है। खड़ी-खड़ी बुला रही है, "कौओं आओ, कौओं आओ।" कौए बहुत काफ़ी आ चुके हैं, पर और भी आते जाते हैं। वे छत की मुंडेर पर बैठे अधीरता से पंख हिला कर बेहद शोर मचा रहे हैं। फिर भी उन कौओं की संख्या से लड़की का मन जैसे भरा नहीं है। बुला ही रही है, "कौओं आओ, कौओं आओ"

देखते-देखते छत की मुंडेर कौओं से बिलकुल काली पड़ गयी। उनमें से कुछ अब उड़ कर लड़की की धोती से जा टकराने लगे। कौओं के खूब आ घिरने पर लड़की मानो उन आमंत्रित अतिथियों के प्रति गाने लगी—

"कागा चुन-चुन खाइयो····।"

गाने के साथ उसने अपने हाथ की रोटियों में से तोड़-तोड़ कर नन्हे-नन्हें टुकड़े भी चारों ओर फेंकने शुरू किये। गाती जाती थी—"कागा चुन-चुन खाइयो....।" वह मग्न मालूम होती थी और अनायास उसकी देह थिरक कर नाच-सी जाती थी। कौए चुन-चुन खा रहे थे और वह गा रही थी—"कागा चुन-चुन खाइयो····।"

आगे वह क्या गाती है, कौए की काँव-काँव और उनके पंखों की फड़-फड़ाहट के मारे साफ़ सुनाई न दिया। कौए लपक-लपककर मानो टूटने से पहले उसके हाथों से टुकड़ा छीन ले रहे थे। वे लड़की के चारों ओर ऐसे छा रहे थे, मानो वे प्रेम से उसको ही खाने को उद्यत हों। और

लड़की कभी इधर कभी उधर झुक कर घूमती हुई ऐसे लीन भाव से गा रही थी कि जाने क्या मिल रहा हो।

रोटी समाप्त होने लगी। कौए भी समझ गये। जब अन्तिम टुकड़ा हाथ में रह गया तो वह गाती हुई उस टुकड़े को हाथ में फहराती हुई जोर से दो-तीन चक्कर लगा उठी। फिर उसने वह टुकड़ा ऊपर आसमान की ओर फेंका—"कौआ खाओ, कौआ खाओ।" और बहुत से कौए एक ही साथ उड़कर उसे लपकने झपटे। उस समय उन्हे देखती हुई लड़की मानो आनन्द से चीखती हुई सी आवाज में गा उठी—

"दो नैना मत खाइयो ?
पीउ मिलन की आस।"

रोटियाँ खत्म हो गयीं। कौए उड़ चले। लड़की एक-एक कर उनको उड़कर जाता हुआ देखने लगी। पल-भर में छत कोरी हो गयी। अब वह आसमान के नीचे अकेली अपनी छत पर खड़ी थी। बहुत से मकानों की बहुत-सी छतें थीं। उन पर कोई होगा, कोई न होगा। पर लड़की दूर अपने कौओं को उड़ते जाते हुए देखती रह गयी। गाना समाप्त हो गया था। धूप अभी फूटी ही थी। आसमान गहरा नीला था। लड़की के ओंठ खुले थ, दृष्टि स्थिर थी। जाने, भूली-सी वह क्या देखती रह गयी।

थोड़ी देर के बाद उसने मानो जग कर अपने आस-पास के जगत को भी देखा! इसी की राह में क्या मेरी ओर भी देखा ? देखा भी हो; पर शायद मैं उसे नहीं दीखा था। उसके देखने में सचमुच कुछ दीखता ही था; यह मैं कह नहीं सकता। पर कुछ ही पल के अनन्तर वह मानो वर्तमान के प्रति, वास्तविकता के प्रति, चेतन हो आयी। तब फिर बिना देर लगाए चटचट उतरती हुई वह नीचे अपने घर में चली गयी।

मैं अपनी खिड़की में खड़ा-खड़ा चाहने ल ा कि मैं भी देखूँ, कौए कहाँ-कहाँ उड़ रहे हैं, और वे कितनी दूर चले गये हैं। क्या वे कहीं दीखते भी हैं ? पर मुश्किल से मुझे दो-एक ही कौए दीखे। वे निरर्थक भाव से यहाँ बैठे थे, या वहाँ उड़ रहे थे। वे मुझे मूर्ख और घिनौने मालूम हुए। उनकी काली देह और काली चोंच मन को बुरी लगी।

मैंने सोचा कि "नहीं, अपनी देह मैं कौओं से नहीं नुचवाऊँगा। छिः चुन-चुन कर इन्हीं के खाने के लिए क्या मेरी देह है? मेरी देह और कौए?—छिः।"

जान पड़ता है, खड़े-खड़े मुझे काफ़ी समय खिड़की पर हो गया, क्योंकि इस बार देखा कि ढेर के ढेर कपड़े कंधे पर लादे वही लड़की फिर उसी छत पर आ गई। इस वार वह गाती नहीं है, वहाँ पड़ी एक खाट पर उन कपड़ों को पटक देती है और फिर उन कपड़ों में से एक-एक को चुनकर, पटक कर, वहीं छत पर सुखा देती। छोटे-बड़े उन कपड़ों की गिनती काफ़ी रही होगी। वे उठाये जाते रहे, फटके जाते रहे, फैलाये जाते रहे, पर उनका अन्त शीघ्र आता न दीखा। आखिर सब खतम हो गये, तो लड़की ने सिर पर आये हुए धोती के पल्ले को पीछे किया। उसने एक अँगड़ाई ली, फिर सिर को जोर से हिला कर अनबँधे अपने बालों को छिटका लिया और धीमे-धीमे वहीं डोल कर उन बालों पर हाथ फेरने लगी। कभी बालों की लट को सामने लाकर देखती, फिर उसी को लापरवाही से पीछे फेंक देती। उसके बाल गहरे काले थे और लम्बे थे। मालूम नहीं, उसे अपने इस वैभव पर सुख या दुःख था, कुछ देर वह उँगलियाँ फेर-फेर अपने बालों को अलग-अलग छिटकाती रही। फिर चलते-चलते एकाएक उन सब बालों को इकट्ठा समेट कर झटपट जूड़ा-सा बाँध, पल्ला सिर पर खींच, वह नीचे उतर गयी।

इसके बाद मैं खिड़की पर नहीं ठहरा। घर में छोटी साली आई हुई है। इसी शहर के दूसरे भाग में रहती है और ब्याह न करके कालिज में पढ़ती है। मैंने कहा—"सुनो यहाँ आओ।"

उसने हँस कर पूछा—"यहाँ कहाँ?"

खिड़की के पास आ कर मैंने पूछा—"क्यों जी, जाह्नवी का मकान जानती हो?"

"जाह्नवी? क्यों, वह कहाँ है?"

"मैं क्या जानता हूँ कहाँ हैं? पर देखो, वह घर तो उसका नहीं है?"

उसने कहा—"मैंने घर नहीं देखा। उधर उसने कालिज भी छोड़ दिया हैं।"

"चलो अच्छा है।" मैंने कहा और उसे जैसे-तैसे टाला। क्योंकि वह पूछने-ताछने लगी थी कि क्या काम है, जाह्नवी को मैं क्या और कैसे और क्यों जानता हूँ। सच यह था कि मैं रत्ती-भर उसे नहीं जानता था। एक बार अपने ही घर में इसी साली की कृपा और आग्रह पर एक निगाह उसको देखा था। बताया गया था कि वह जाह्नवी है, और मैंने अनायास स्वीकार कर लिया था कि अच्छा, वह जाह्नवी होगी। उसके बाद की सचाई यह है कि मुझे कुछ नहीं मालूम कि उस जाह्नवी का क्या बन गया और क्या नहीं बना। पर किसी सचाई को बहनोई के मुँह से सुन कर स्वीकार कर ले तो साली क्या? तिस पर सचाई ऐसी कि नीरस। पर ज्यों-त्यों मैंने उसे टाला।

बात-बात में मैंने कहना भी चाहा कि ऐसी ही तुम जाह्नवी को जानती हो, ऐसी ही तुम साथ पढ़ती थी कि जरा बात पर कह दो 'मालूम नहीं।' लेकिन मैंने कुछ कहा नहीं।

इसके बाद सोमवार हो गया। मंगलवार भी हो गया और आज बुध भी होकर चुका जा रहा है। चौथा रोज है। हर रोज़ सबेरे खिड़की पर देखता हूँ कि कौए काँव-काँव; छीन-झपट कर रहे हैं और वह लड़की उन्हें रोटी के टुकड़ों के मिस कर कह रही है—"कागा चुन-चुन खाइयो ...।"

मुझको नहीं मालूम कि कौए जो कुछ उसका खाएँगे उसे कुछ भी उसका सोच है। कौओं को बुला रही है—"कौओं-कौओं आओ-आओ", साग्रह कह रही है—"कौओं खाओं, कौओं खाओ, कौओं खाओ!" वह खुश है कि कौए आ गये हैं और खा रहे है। पर एक बात है कि ओ कौओं, जो तन चुन-चुन कर खा लिया जायगा उसको खा लेने में खुशी से मेरी अनुमति है। वह खा-खू कर तुम सब निबटा देना। लेकिन ऐ मेरे भाई कौओ, इन दो नैनों को छोड़ देना। इन्हें कहीं मत खा लेना। क्या तुम जानते हो कि उन नैनों में एक आस बसी है जो पराये के बस है। वह नैना पीउ की बाट में हैं। ऐ कौओं वह मेरे नहीं हैं, मेरे तन के

नहीं हैं। वे पीउ के आस को बसाये रखने के लिए हैं। सो उन्हें छोड़ देना।

आज सबेरे भी मैंने यह सब कुछ देखा। कौओं को रोटी खिला कर वह उसी तरह नीचे चली गयी। फिर छोटे-बड़े बहुत-से कपड़े धो कर लायी। उसी भाँति उन्हें झटक कर सुखा दिया। वैसे ही बाल छितरा कर थोड़ी देर डोली। फिर सहसा ही उन्हें जूडे में सँभाल कर नीचे भाग गयी।

जाह्नवी को घर में एक बार देखा था। पत्नी ने उसे खास तौर पर देख लेने को कहा था और उसके चले जाने पर पूछा था—"क्यों कैसी है?"

मैंने कहा था—"बहुत भली मालूम होती है, सुन्दर भी है, पर क्यों?"

"अपने बिरजू के लिए कैसी रहेगी?"

बिरजू दूर के रिश्ते में मेरा भतीजा लगता है। इस साल एम० ए० में पहुँचा है।

मैंने कहा—"अरे, ब्रजनन्दन! वह उसके सामने बच्चा है।"

पत्नी ने अचरज से कहा—"बच्चा है, बाईस बरस का तो हुआ!"

"बाईस छोड़ व्यालीस का भी हो जाय। देखा कैसे ठाठ से रहता है? यह लड़की देखो, कैसी बस सफ़ेद साड़ी पहनती है। बिरजू इसके लायक़ कहाँ है। यों भी कह सकते हो कि यह बिचारी लड़की बिरजू के ठाठ के लायक़ नहीं है।"

बात मेरी कुछ सही, कुछ व्यंग थी, पत्नी ने उसे कान पर भी न लिया। कुछ दिनों के बाद मुझे मालूम हुआ कि पत्नीजी की कोशिशों से जाह्नवी के माँ-बाप से (माँ के द्वारा बाप से) काफ़ी आगे तक बढ़ कर बातें कर ली गई हैं। शादी के मौक़े पर क्या देना होगा; क्या लेना होगा, एक-एक कर सभी बातें पेशगी तय होती जा रही हैं।

इतने में सब किये-कराये पर पानी फिर गया। जब बात कुल किनारे पर आ गयी थी, तभी हुआ क्या कि हमारे ब्रजनन्दन के पास एक पत्र आ पहुँचा। उस पत्र के कारण एकदम सब चौपट हो गया। इस तरह रंग में भंग हो जाने पर हमारी पत्नी का मन पहले तो गिर कर चूर-चूर होता

जान पड़ा, पर फिर वह उसी पर बड़ी खुश मालूम होने लगी।

मैं तो मानो इन मामलों में अनावश्यक प्राणी हूँ ही। कानों-कान खबर तक न हुई। जब हुई तो इस तरह।

पत्नी एक दिन सामने आ धमकी! बोली—"यह तुमने जाह्नवी के बारे में पहले से क्यों नहीं बतलाया?"

मैंने कहा—"जाह्नवी के बारे में मैंने पहले से क्या नहीं बतलाया भाई?"

"यही कि वह ऐसी है?"

मैंने पूछा—"ऐसी कैसी?"

उन्होंने कहा—"अब बनो मत! जैसे तुम्हें कुछ नहीं मालूम।"

मैंने कहा—"अरे, यह तो कोई हाईकोर्ट का जज भी नहीं कह सकता कि मुझे कुछ भी नहीं मालूम। लेकिन, आखिर जाह्नवी के बारे में मुझे क्या मालूम है, यह तो मालूम हो।"

श्रीमती जी ने आकृत्रिम आश्चर्य से कहा—"बिरजू के पास खत आया है, सो तुमने कुछ नहीं सुना? आजकल की लड़कियाँ—बस कुछ न पूछो। यह भी चलो भला हुआ कि मामला खुल गया, नहीं तो...."

क्या मामला, कहाँ, कैसे खुला और भीतर से क्या कुछ रहस्य बाहर हो पड़ा सो सब बिना जाने मैं क्या निवेदित करता? मैंने कहा—"कुछ बात साफ़ भी कहो।"

उन्होंने कहा—"वह लड़की आशनाई में फँसी थी—पढ़ी-लिखी सब एक जात की होती हैं।"

मैंने कहा—"सब की जात-बिरादरी एक हो जाय तो बखेड़ा टले। लेकिन असल बात भी तो बताओ।"

"असल बात जाननी है तो जाकर पूछो उसकी महतारी से, भली समधिन बनने चली थी। मुझे तो पहले ही से दाल में काला मालूम होता था। पर देखो न, कैसी सीधी-भोली बातें करती थी। बस तो देर क्या थी, सब हो चुका था। बस लगन-मूहूर्त की बात थी। राम-राम, भीतर पेट में कैसी कालिख रखे है, मुझे पता न था। चलो आखिर परमात्मा ने

इज्ज़त बचा ली। वह लड़की घर में आ जाती, तो मेरा मुँह अब दिखाने लायक़ न रहता।"

मेरी पत्नी का मुँह क्यों किस भाँति दिखाने लायक न रहता, उसमें क्या विकृति आ रहती, सो उनकी बातों से समझ में न आया। उनकी बातों में रस कई भाँति का मिला, तथ्य न मिला। कुछ देर के बाद उन बातों में मैंने तथ्य पाने का प्रयत्न ही छोड़ दिया और चुपचाप पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म का विवेचन सुनता रहा। पता लगाने पर मालूम हुआ कि ब्रजनन्दन के पास खुद यानी जाह्नवी का पत्र आया था। पत्र मैंने स्वयं देखा। उस पत्र को देखकर मेरे मन में कल्पना हुई कि अगर वह मेरी लड़की होती तो ?—मुझे यह अपना सौभाग्य मालूम नहीं हुआ कि जाह्नवी मेरी लड़की नहीं है। उस पत्र की बात कई बार मन में उठी है और घुमड़ती रह गई। ऐसे समय चित्त का समाधान उड़ गया है और मैं शून्य भावों से, हमें जो शून्य चारों ओर से ढँके हुए है, उसकी ओर देखता रह गया हूँ।

पत्र बड़ा नहीं था। सीधे-सादे ढंग से उसमें यह लिखा था कि आप जब विवाह के लिए यहाँ पहुँचेंगे तो मुझे भी प्रस्तुत पायेंगे। लेकिन मेरे चित्त की हालत इस समय ठीक नहीं है और विवाह जैसे धार्मिक अनुष्ठान की पात्रता मुझमें नहीं है। एक अनुगता आपको विवाह द्वारा मिल जायगी। लेकिन विवाह द्वारा सेविका नहीं मिलनी चाहिए—धर्मपत्नी मिलनी चाहिए—वह जीवन-संगिनी भी हो। वह मैं हूँ या हो सकती हूँ, इसमें मुझे बहुत सन्देह है। फिर भी अगर आप चाहें, आपके माता-पिता चाहें, तो मैं प्रस्तुत अवश्य हूँ। विवाह में आप मुझे लेंगे और स्वीकार करेंगे, तो मैं अपने को दे ही दूँगी और आपके चरणों की धूलि माथे से लगाऊँगी। आपकी कृपा मानूँगी। कृतज्ञ होऊँगी। पर निवेदन है कि यदि आप मुझ पर से अपनी माँग उठा लेंगे, मुझे छोड़ देंगे, तो कृतज्ञ होऊँगी। निर्णय आपके हाथ में है जो चाहें, करें।

मुझे ब्रजनन्दन पर आश्चर्य आकर आश्चर्य नहीं होता। उसने दृढ़ता के साथ कह दिया कि मैं यह शादी नहीं करूँगा। लेकिन उसने मुझसे

अकेले में यह भी कहा कि चाचा जी, मैं और विवाह करूँगा ही नहीं, करूँगा तो उसी से करूँगा। उस पत्र को वह अपने से अलाहिदा नही करता है और मै देखता हूँ कि उस ब्रजनन्दन का ठाट-बाट आप ही कम होता जा रहा है। सादा रहने लगा है और अपने प्रति सगर्व बिलकुल भी नहीं दीखता है। पहले विजेता बनना चाहता था; अब विनयावनत दीखता है और आवश्यकता से अधिक बात नहीं करता। एक बार प्रदर्शिनी मे मिल गया, मैं देख कर हैरत में रह गया। ब्रजनन्दन एकाएक पहिचाना भी न जाता था। मैंने कहा—"ब्रजनन्दन कहो क्या हाल है ?"

उसने प्रणाम करके कहा—"अच्छा है।"

वह मेरे घर पर भी आया।

पत्नी ने उसे बहुत प्रेम किया और बहुत-बहुत बधाइयाँ दीं कि ऐसी लड़की से शादी होने से चलो भगवान ने समय पर रक्षा कर दी। जाह्नवी नाम की लड़की की एक-एक छिपी बात बिरजू की चाची को मालूम हो गई है। वह बातें—ओह ! कुछ न पूछो, बिरजू भैया, मुँह से भगवान किसी की बुराई न करावे। लेकिन....

फिर कहा—"भई, अब बहू के बिना काम कब तक चलावें, तू ही बता। क्यों रे, अपनी चाची को बुढ़ापे में भी तू आराम नहीं देगा ? सुनता है कि नहीं ?"

ब्रजनन्दन चुपचाप सुनता रहा।

पत्नी ने कहा—"और यह तुझे हो क्या गया है ? अपने चाचा की बात तुझे भी लग गई है क्या ? न ढंग के कपड़े, न रीत की बातें। उन्हें तो अच्छे कपड़े-लत्ते शोभते नहीं हैं। तू क्यों ऐसा रहने लगा रे ?"

ब्रजनन्दन ने कहा—'कुछ नहीं, चाची, और कपड़े घर रक्खे हैं।'

अकेले पाकर मैंने भी उससे कहा—"ब्रजनन्दन बात तो सही है। अब शादी करके काम में लगना चाहिए और घर बसाना चाहिए। है कि नहीं।"

ब्रजनन्दन ने मुझे देखते हुए बड़े-बूढ़े की तरह कहा—"अभी तो बहुत उमर पड़ी है, चाचाजी।"

मैंने इस बात को ज्यादा नहीं बढ़ाया।

अब खिड़की के पार इतवार को, सोमवार को, मंगलवार को और आज बुधवार को भी सवेरे-ही-सवेरे छत पर नित्य रोटी के मिस कौओ को पुकार-पुकार कर बुलाने-खिलाने वाली यह जो लड़की देख रहा हू, सो क्या जाह्नवी है? जाह्नवी को मैंने एक ही बार देखा है, इसलिए, मन को कुछ निश्चय नहीं होता है। क़द भी इतना ही था, लावण्य शायद उस जाह्नवी में अधिक था। पर यह वह नही है—जाह्नवी नही है, ऐसा मैं दिलासा मन को तनिक भी नहीं दे पाता हूँ। सवेरे-ही-सवेरे इतने कौए बुला लेती है कि खुद दीखती ही नही, काले-काले वे ही वे दीखते हैं और वे भी उसके चारों ओर ऐसी छीना-झपट-सी करते हुए उड़ते रहते है, मानो बड़े स्वाद से, बड़े प्रेम से, चोंथ-चोंथ कर उसे खाने के लिए आपस मे बदाबदी मचा रहे है। पर उनसे घिरी वह कहती है, "आओ, कौओ, आओ।" जब वे आ जाते हैं तो गाती हैं—

"कागा चुन-चुन खाइयो····!"

और जब जाने कहाँ-कहाँ के कौए इकट्ठे काऊँ-काऊँ करते हुए चुन-चुन कर खाने लगते हैं और फिर खाऊँ-खाऊँ करके उससे भी ज्यादा माँगने लगते है तब वह चीख मचाकर चिल्लाती है—कि ओ रे कागा, नहीं, ये—

"दो नैना मत खाइयो।
मत खाइयो—
पीउ मिलन की आस।"

मिठाईवाला

[भगवती प्रसाद बाजपेयी]

(१)

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता—"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला।"

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र, किन्तु मादक-मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कंठ से फूटा हुआ उपर्युक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हलचल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिये हुए युवतियाँ चिकों को उठा कर छज्जों पर से नीचे झाँकने लगतीं। गलियों और उनके अन्तर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुण्ड उसे घेर लेता और तब वह खिलौनेवाला वहीं बैठ कर खिलौने की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौने का मोल-भाव करने लगते—"इछका दाम क्या है, औल इछका? और इछका?" खिलौने वाला बच्चों को देखता, और उनकी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों से पैसे ले लेता और बच्चों की इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फिर बच्चे उछलने-कूदने लगते और तब फिर खिलौने वाला उसी प्रकार गा कर कहता है—"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला।" सागर की हिलोर की भाँति उसका यह मादक गान गली-भर के मकानों में, इस ओर से उस ओर तक, लहराता हुआ पहुँचता और खिलौने वाला आगे बढ़ जाता।

राय विजय बहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आये। वे दो बच्चे थे—चुन्नू और मुन्नू! चुन्नू जब खिलौना ले आया, तो बोला—"मेला घोला कैछा छुन्दल ऐ।"

मुन्नू बोला—"औल देखो, मेला कैछा छुन्दल ऐ।"

दोनों अपने हाथी-घोड़े लेकर घर भर में उछलने लगे। इन बच्चों की माँ, रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रही। अन्त में दोनों बच्चों को बुला कर उसने पूछा—"अरे ओ चुन्नू-मुन्नू, ये खिलौने तुमने कितने में लिए है ?"

मुन्नू बोला—"दो पैछे में। खिलौने वाला दे गया ऐ।"

रोहिणी सोचने लगी—इतने सस्ते कैसे दे गया है। कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया ही है, इतना तो निश्चय है।

एक ज़रा-सी बात ठहरी ! रोहिणी अपने काम में लग गई। फिर कभी उसे इस पर विचार करने की आवश्यकता ही भला क्यों पड़ती।

(२)

छः महीने बाद।

नगर-भर में दो-चार दिनों से एक मुरली वाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—"भाई वाह ! मुरली बजाने में वह एक ही उस्ताद है। मुरली बजाकर गाना सुना कर वह मुरली बेचता भी है, सो भी दो-दो पैसे। भला इसमें उसे क्या मिलता होगा ! मेहनत भी तो न आती होगी !"

एक व्यक्ति ने पूछ लिया—"कैसा है वह मुरली वाला, मैंने तो उसे नहीं देखा ?"

उत्तर मिला—"उम्र तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस-बत्तीस का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफा बाँधता है।"

"वही तो नहीं; जो पहले खिलौने बेचा करता था ?"

"क्या वह पहले खिलौने भी बेचा करता था ?"

"हाँ, जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार का वह भी था।"

"तो वही होगा। पर भई, है वह एक उस्ताद।"

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरली वाले की चर्चा होती। प्रतिदिन

नगर की प्रत्येक गली मे उसका मादक, मृदुल स्वर सुनाई पड़ता—"बच्चों को बहलाने वाला, मुरलिया वाला।"

रोहिणी ने भी मुरली वाले का यह स्वर सुना। तुरन्त ही उसे खिलौने वाले का स्मरण हो आया। उसने मन ही मन कहा—"खिलौने वाला भी इसी तरह गा-गाकर खिलौने बेचा करता था।"

रोहिणी उठ कर अपने पति विजय बाबू के पास गयी—"जरा उस मुरली वाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू के लिए ले लूँ। क्या पता यह फिर इधर आये, न आये। वे भी, जान पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गये हैं।"

विजय बाबू एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। उसी तरह उसे लिए हुए वे दरवाज़े पर आकर मुरली वाले से बोले—"क्यों भई, किस तरह देते हो मुरली ?"

किसी की टोपी गली में गिर पड़ी। किसी का जूता पार्क में ही छूट गया, और किसी की सोथनी (पाजामा) ही ढीली होकर लटक आई। इस तरह दौड़ते-हाँफते हुए बच्चों का झुण्ड आ पहुँचा। एक स्वर से सब बोल उठे—"अम़ बी लेंदे मुल्ली, और अम बी लेदे मुल्ली।"

मुरली वाला हर्ष-गद्गद् हो उठा। बोला—"सबको देंगे भैया! लेकिन ज़रा रुको, ज़रा ठहरो, एक-एक को देने दो। अभी इतनी जल्दी हम कहीं लौट थोड़े ही जायेंगे। बेचने तो आये ही हैं, और हैं भी इस समय मेरे पास एक दो नहीं, पूरी सत्तावन....। हाँ बाबूजी, क्या पूछा था आपने, कितने में दीं!....दीं तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाब से हैं, पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूँगा।"

विजय बाबू भीतर-बाहर दोनों रूपों में मुस्किरा दिये। मन-ही-मन कहने लगे—"कैसा ठग है! देता तो सब को इसी भाव से है, पर मुझ पर उलटा एहसान लाद रहा है।" फिर बोले—"तुम लोगों को झूठ बोलने की आदत होती है। देते होगे सभी को दो-दो पैसे में, पर एहसान का बोझा मेरे ही ऊपर लाद रहे हो।"

मुरलीवाला एकदम अप्रतिभ हो उठा। बोला—"आपको क्या पता

बाबूजी कि इनकी असली लागत क्या है। यह तो ग्राहकों का दस्तूर होता है कि दूकानदार चाहे हानि ही उठा कर चीज़ क्यों न बेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं—दूकानदार मुझे लूट रहा है। आप भला काहे को विश्वास करेंगे। लेकिन सच पूछिये तो बाबू जी, असली दाम दो ही पैसा है। आप कहीं से दो पैसे मे ये मुरलियाँ नही पा सकते। मैंने तो पूरी एक हजार बनवाई थीं, तब मुझे इस भाव पड़ी हैं!"

विजय बाबू बोले—"अच्छा, मुझे ज्यादा वक़्त नहीं है। जल्दी से दो ठो निकाल दो।

दो मुरलियाँ लेकर विजय बाबू फिर मकान के भीतर पहुँच गये।

मुरलीवाला देर तक उन बच्चों के झुण्ड में मुरलियाँ बेचता रहा। उसके पास कई रंग की मुरलियाँ थीं! बच्चे जो रंग पसन्द करते मुरली-वाला उसी रंग की मुरली निकाल देता।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है। तुम यही ले लो बाबू, राजा बाबू, तुम्हारे लायक़ तो बस यह है। हाँ भैये, तुमको वही देंगे। ये लो.... तुमको वैसी न चाहिए, ऐसी चाहिए, यह नारंगी रंग की, अच्छा; वही लो।....पैसे नहीं है? अच्छा अम्मा से पैसे ले आओ! मैं अभी बैठा हूँ। तुम ले आए पैसे? अच्छा, ये लो, तुम्हारे लिए मैंने पहले ही से यह निकाल रखी थी। तुमको पैसे नहीं मिले? तुमने अम्मा से ठीक तरह मांगे न होंगे। धोती पकड़ कर, पैरों से लिपट कर, अम्मा से पैसे माँगे जाते है बाबू! हाँ, फिर जाओ। अबकी बार मिल जायेंगे। दुअन्नी है तो क्या हुआ, ये छः पैसे वापस लो। ठीक हो गया न हिसाब?....मिल गये पैसे! देखो, मैंने तरक़ीब बताई! अच्छा, अब तो किसी को नहीं लेना है? सब ले चुके? तुम्हारी माँ के पास पैसे नहीं? अच्छा, तुम भी यह लो। अच्छा तो अब मैं चलता हूँ।"

इस तरह मुरलीवाला फिर आगे बढ़ गया।

(३)

आज अपने मकान में बैठी हुई रोहिणी मुरलीवाले की सारी बाते सुनती रही। आज भी उसने अनुभव किया, बच्चों के साथ इतने प्यार

से बातें करने वाला फेरी वाला पहले कभी नहीं आया। फिर वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है! भला आदमी जान पड़ता है। समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा-मारा फिरता है। पेट जो न कराये, सो थोड़ा।

इसी समय मुरलीवाले का क्षीण स्वर दूसरी निकट की गली से सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलाने वाला, मुरलिया वाला।"

रोहिणी इसे सुनकर मन-ही-मन कहने लगी—और स्वर कैसा मीठा है इनका।

बहुत दिनों तक रोहिणी को मुरलीवाले का वह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति वे स्नेहसिक्त बातें याद आती रहीं। महीने के महीने आये और चले गये। फिर मुरली वाला न आया। धीरे-धीरे उसकी स्मृति भी क्षीण हो गयी।

(४)

आठ मास बाद—

सर्दी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके मकान की छत पर चढ़ कर आजानुलंबित केश-राशि सुखा रही थी। इसी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलाने वाला, मिठाई वाला।"

मिठाईवाले का स्वर इसके लिए परिचित था, झट से रोहिणी नीचे उतर आयी। उस समय उसके पति मकान में नहीं थे। हाँ, उसकी वृद्धा दादी थीं। रोहिणी उनके निकट आकर बोली—"दादी, चुन्नू-मुन्नू के लिए मिठाई लेनी है। ज़रा कमरे में चल कर ठहराओ तो। मैं उधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो। ज़रा हट कर मैं चिक की ओट में बैठी रहूँगी।"

दादी उठ कर कमरे में आ कर बोलीं—"ए मिठाईवाले, इधर आना।"

मिठाईवाला निकट आ गया। बोला—"कितनी मिठाई दूँ माँ! ये नये तरह की मिठाइयाँ हैं—रंग बिरंगी, कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी,

ज़ायकेदार, बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नही घुलतीं। बच्चे इन्हे बड़े चाव से चूसते है। इन गुणों के सिवा ये खाँसी भी दूर करती है! कितनी दूँ? चपटी, गोल, पहलदार गोलियाँ है। पैसे की सोलह देता हूँ।"

दादी बोली—"सोलह तो बहुत कम होती है, भला पचीस तो देते।"

मिठाईवाला—"नहीं, दादी, अधिक नहीं दे सकता। इतनी भी देता हूँ, यह अब मैं तुम्हें क्या। खैर मैं अधिक न दे सकूंगा।"

रोहिणी दादी के पास ही थी। बोली—"दादी, फिर भी काफ़ी सस्ता दे रहा है। चार पैसे की ले लो। यह पैसे रहे।"

मिठाईवाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

"तो चार की दे दो। अच्छा पच्चीस नहीं सही बीस ही दे। अरे हाँ, मैं बूढ़ी हुई, मोल-भाव अब मुझे ज़्यादा करना आता भी नहीं।"

कहते हुए दादी के पोपले मुँह से ज़रा सी मुस्किराहट भी फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा—"दादी, इससे पूछो, तुम इस शहर में और भी कभी आये थे या पहली बार आये हो। यहाँ के निवासी तो तुम हो नहीं।"

दादी ने इस कथन को दोहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाईवाले ने उत्तर दिया—"पहली बार नहीं और भी कई बार आ चुका हूँ।"

रोहिणी चिक की आड़ ही से बोली—"पहले यही मिठाई बेचते हुए आये थे, या और कोई चीज़ लेकर?"

मिठाईवाला हर्ष, संशय और विस्मयादि भावों में डूब कर बोला—इससे पहले मुरली ले कर आया था, और उससे भी पहले खिलौने लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी कुछ बातें पूछने के लिये अस्थिर हो उठी। वह बोली—"इन व्यवसायों में भला तुम्हें क्या मिलता होगा?"

वह बोला—"मिलता भला क्या है! यही खाने-भर को मिल जाता

है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हाँ संतोष, धीरज और कभी-कभी असीम सुख ज़रूर मिलता है और यही मैं चाहता भी हूँ।"

"सो कैसे ? वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ उन बातों की क्यों चर्चा करूँ ? उन्हें आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आपको दुःख ही होगा।"

"जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मैं बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हारा हर्जा न होगा। मिठाई मैं और भी कुछ ले लूँगी।"

अतिशय गम्भीरता के साथ मिठाईवाले ने कहा—"मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का संसार था। बाहर सम्पत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख था। स्त्री सुन्दर थी, मेरी प्राण थी। बच्चे ऐसे सुन्दर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने। उनकी अठखेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था। समय की गति! विधाता की लीला! अब कोई नहीं है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसलिए अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूँ। वे सब अन्त में होंगे तो यहीं कहीं। आखिर, कहीं-न-कहीं जन्मे ही होंगे। उस तरह रहता, घुल-घुल कर मरता। इस तरह सुख-संतोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं में उछल-उछल कर हँस-खेल रहे हैं। पैसों की कमी थोड़े ही है; आपकी दया से पैसे तो काफी हैं। जो नहीं है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।"

रोहिणी ने अब मिठाईवाले की ओर देखा—उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गये। रोहिणी से लिपट कर उसका आँचल पकड़ कर बोले—"अम्मा, मिठाई!"

"मुझसे लो।" कह कर, तत्काल कागज की दो पुड़ियाँ, मिठाइयों से भरी, मिठाईवाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दी।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिये।

मिठाईवाले ने पेटी उठाई और कहा—"अब इस बार ये पैसे न लूँगा।

दादी बोली—"अरे-अरे, न-न, अपने पैसे लिये जा भाई!"

तब तक आगे फिर सुनाई पड़ा उसी प्रकार मादक मृदुल स्वर में—"'बच्चों को बहलाने वाला, मिठाईवाला।"

देशभक्त

[बेचन शर्मा 'उग्र']

(१)

'स्वामिन्, आज कोई सुन्दर सृष्टि करो! किसी ऐसे प्राणी का निर्माण करो जिसकी रचना पर हमे गौरव हो सके। क्यों?'

'सचमुच ? प्रिये, आज तुम्हे क्या सूझा, जो सारा धन्धा छोड़कर यहाँ आई हो, और मेरी सृष्टि-परीक्षा लेने को तैयार हो?'

'तुम्हारी परीक्षा, और मैं लूँगी ? हरे, हरे। मुझे व्यर्थ ही काँटों में क्यों घसीट रहे हो नाथ ? योंही बैठी-बैठी तुम्हारी अद्भुत रचना 'मृत्युलोक' का तमाशा देख रही थी। जब जी ऊब गया, तब तुम्हारे पास चली आई हूँ। अब संसार में मौलिकता नहीं दिखाई देती। वही पुरानी गाथा चारों ओर दिखाई-सुनाई पड़ रही है। कोई रोता है, कोई खिलखिलाता है; एक प्यार करता है, दूसरा अत्याचार करता है, राजा धीरे-धीरे भीख माँगने लगता है और भिक्षुक शासन करने। इन बातों में मौलिकता कहाँ ? इसीलिए प्रार्थना करती हूँ कि कोई मनोरंजक सृष्टि कीजिए। संसार के अधिकतर प्राणी आपको शाप ही देते हैं। एक बार आशीर्वाद भी लीजिए।

'अच्छी बात है, इस समय चित्त भी प्रसन्न है। किसी से मानवसृष्टि की आवश्यक सामग्रियाँ यहीं मँगवाओ। आज मैं तुम्हारे सामने ही तुम्हारी सहायता से सृष्टि करूँगा।'

'मैं, और आपको सहायता दूँगी! तब रहने दीजिये। हो चुकी सृष्टि! सृष्टि करने की योग्यता यदि मुझमें होती तो मैं तुमको कष्ट देने के लिए यहाँ आती?'

'नाराज़ क्यों होती हो, भद्रे! तुमसे पुतला तैयार करने को कौन कहता है? तुम यहाँ चुपचाप बैठी रहो। हाँ, कभी-कभी मेरी ओर

अपने मधुर कटाक्ष को फेर दिया करना। तुम्हारी इतनी ही सहायता से मेरी सृष्टि मे जान आ जायगी, समझीं ?'

'समझी। देखती हूँ, तुम्हारी आदत भी कलयुगी बूढ़ों-सी हुई जा रही है। अभी तक आँखों में जवानी का नशा छाया हुआ है।'

'और तुम्हारी आदत तो बहुत अच्छी हुई जा रही है। बूढ़े मारवाड़ियों की युवती कामिनियों की तरह जब होता है तभी 'खाँव-खाँव' किया करती हो। चलो, जल्दी करो, सब चीज़ें मँगवाओ।'

(२)

क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और पवन के सम्मिश्रण से विधाता ने एक पुतला तैयार किया। इसके बाद उन्होंने सबसे पहले तेज को बुला कर उस पुतले में प्रवेश करने को कहा। तेज के बाद सौन्दर्य, दया, करुणा, प्रेम, विद्या, बुद्धि-बल, संतोष-साहस, उत्साह-धैर्य-गम्भीरता आदि समस्त सद्गुणों से उस पुतले को सजा दिया। अन्त मे आयु और भाग्य की रेखाएँ बनने के लिए ज्यों ही विधाता ने लेखनी उठाई त्योंही ब्रह्मणी ने रोका —'सुनिए भी; इसके भाग्य में क्या लिखने जा रहे हैं, और आयु कितनी दीजियेगा ?'

'क्यों ? तुमको इन बातों से क्या मतलब ? तुम्हें तो तमाशा-भर-देखना है, वह देख लेना ? भौहें तनने लगीं न ! अच्छा लो सुन लो। इसके भाग्य में लिखी जा रही है, भयंकर दरिद्रता, दुःख, चिन्ता और इसकी आयु होगी बीस वर्षो की !'

'अरे ! यह क्या तमाशा कर रहे हैं ? बल, साहस, दया, तेज, सौंदर्य, विद्या, बुद्धि आदि गुणों के देने के वाद दरिद्रता, दुःख और चिन्ता आदि के देने की क्या आवश्यकता है ? फिर सृष्टि को देखकर लोग आपकी प्रशंसा करेंगे या गालियाँ देंगे ? फिर केवल बीस वर्षो की अवस्था ! इन्हीं कारणों से तो मृत्यु-लोक के कवि आपकी शिकायत करते हैं। क्या फिर किसी से 'नाम चतुरानन पै चूकते चले गये' लिखवाने का विचार है ?'

विधाता ने मुस्कराकर कहा—'अब तो रचना हो गयी। चुपचाप

तमाशा भर देखो। इसकी आयु इसलिए कम रखी है जिससे हमें तमाशा जल्द दिखाई पड़े।'

ब्रह्माणी ने पूछा—'इसे मृत्यु-लोक वाले किस नाम से पुकारेंगे?' प्रजापति ने गर्व-भरे स्वर में उत्तर दिया—'देशभक्त।'

(३)

अमरावती से इन्द्र ने, कैलाश से शिव ने, बैकुण्ठ से कमलापति ने—संसार-रङ्गमञ्च पर देशभक्त का प्रवेश उस समय देखा, जब उसकी अवस्था उन्नीस वर्ष की हो गई। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। देवमंडली का एक-एक दिन हमारी अनेक शताब्दियों से भी बड़ा होता है। हमारे उन्नीस वर्ष तो उनके कुछ मिनटों से भी कम थे!

देशभक्त के दर्शनों से भगवान् कामारि प्रसन्न होकर नाचने लगे। उन्होंने अपनी प्राणेश्वरी पार्वती का ध्यान देशभक्त की ओर आकर्षित करते हुए कहा—'देखो, यह स्रष्टा की अभूतपूर्व रचना है। कोई भी देवता देशभक्त के रूप में नरलोक में जाकर अपने को धन्य समझ सकता है, प्रिये, इसे आशीर्वाद दो।'

प्रसन्नवदना उमा ने कहा—'देशभक्त की जय हो!'

एक दिन देशभक्त के तेजपूर्ण मुखमंडल पर अचानक कमला की दृष्टि पड़ गई। उस समय यह (देशभक्त) हाथ में पिस्तौल लिये किसी देश-द्रोही का पीछा कर रहा था। इन्दिरा ने घबरा कर विष्णु को उसकी ओर आकर्षित करते हुए कहा—'यह कौन है? मुख पर इतना तेज—ऐसी पवित्रता और करने जा रहे हैं, राक्षसी कर्म—हत्या! यह कैसी लीला है, लीलाधर!' विष्णु ने कहा—'चुपचाप देखो। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे। यदि यह देशभक्त—राक्षसों का काम करने जा रहा है, तो राम, कृष्ण, प्रताप, शिवा, गोविन्द, नेपोलियन सबने राक्षसी कार्य किया है। देवी, इसे प्रणाम करो! यह कर्ता की पवित्र कृति है।'

× × ×

हाथ की पिस्तौल देश-द्रोही के मस्तक के सामने कर, देशभक्त ने कहा—'मूर्ख। पश्चात्ताप कर देश-द्रोह से हाथ खीच कर मातृ-सेवा की प्रतिज्ञा कर। नहीं तो मरने के लिए तैयार हो जा।'

देशद्रोही के मुख पर घृणा और अभिमान-भरी मुस्कराहट दौड़ गयी। उसने शासन के स्वर में उत्तर दिया—

'अज्ञान, सावधान! हम शासकों के लाड़ले है! हमारे माँ बाप और ईश्वर, सर्वशक्तिमान सम्राट् है। सम्राट् के सम्मुख देश की बड़ाई।'

'अन्तिम बार पुनः कह रहा हूँ, 'माता की जय!' बोल, अन्यथा इधर देख!' देशभक्त की पिस्तौल गरजने के लिए तैयार हो गयी

सिर पर संकट देखकर देशद्रोही ने अपनी जेब से सीटी निकाल कर जोर से बजाई। संभवतः देशद्रोही के अनेक रक्षक गुप्त रूप से उसके साथ थे! देखते-देखते बीस देश-द्रोहियों का दल देशभक्त की ओर लपका! फिर क्या था, देशभक्त की पिस्तौल गरज उठी। क्षण भर में देश-द्रोहियों का सरदार, कबूतर की तरह पृथ्वी पर लोटने लगा। गिरफ़्तार होने के पूर्व सफल-प्रयत्न देशभक्त आनन्द-विभोर होकर चिल्ला उठा—'माता की जय हो!'

काँपते हुए इन्द्रासन, ने पुष्पवृष्टि करते हुए नन्दन कानन ने, ताँडव-नृत्य में लीन रुद्र ने, कल-कल करती हुई सुरसरिता ने एक स्वर से कहा—'देशभक्त की जय हो।'

विधाता प्रेम-गद्‌गद् होकर ब्रह्माणी से बोले—'देखती हो, देशभक्त के चरणस्पर्श से अभागा कारागार अपने को स्वर्ग समझ रहा है। लोहे की लड़ियों—हथकड़ी बेड़ियों—ने मानो पारस पा लिया है, संसार के हृदय में प्रसन्नता का समुद्र उमड़ रहा है, वसुन्धरा फूली नहीं समाती! यह है मेरी कृति, यह है मेरी कृति, यह है मेरी कृति, यह है मेरी विभूति! प्रिये गाओ, मङ्गल मनाओ, आज मेरी लेखनी धन्य हुई।'

(४)

जिस दिन देशभक्त की जवानी का अन्तिम पृष्ठ लिखा जाना था।

उन दिन स्वर्ग-लोक में आनन्द का अपार पारावार उमड़ रहा था। त्रिसकोटि देवागनाओं की थालियों को उदार कल्पवृक्ष ने अपने पुष्पो से भर दिया था, अमरावती ने अपना अपूर्व शृङ्गार किया था, चारों ओर मङ्गल गान गाए जा रहे थे।

समय से बहुत पहले देवतागण विमान पर आरूढ़ होकर आकाश में विचरने और देशभक्त के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

× × ×

सम्राट् के समर्थक भीषण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर एक बडे मैदान में खड़े थे। देशभक्त पर 'सम्राट् के प्रति विद्रोह' का अपराध लगा कर न्याय का नाटक खेला जा चुका था। न्यायाधीश की यह आज्ञा सुनाई जा चुकी थी कि 'या तो देशभक्त अपने कर्मों के लिए पश्चात्ताप प्रकट कर 'सम्राट् की जय' घोषणा करे या तोप से उसे उड़ा दिया जाय।' देशभक्त पश्चात्ताप क्या करता? अतः उसे सम्राट् के सैनिकों ने जंजीर मे कस कर तोप के सम्मुख खड़ा कर दिया—

सम्राट् के प्रतिनिधि ने कहा—

'अपराधी! न्याय की रक्षा के लिए अंतिम बार फिर कह रहा हूँ——'सम्राट् की जय' घोषणा कर पश्चात्ताप कर ले।'

मुस्कराते हुए देशभक्त बन्दी ने कहा—

'तुम अपना काम करो, मुझसे पश्चात्ताप की आशा व्यर्थ है। तुम मुझसे 'सम्राट् की जय' कहलाने के लिए क्यों मरे जा रहे हो? सच्चा सम्राट् कहाँ है तुम्हारे कहने से संसार-लुटेरों को मैं कैसे सम्राट् मान लूँ? सम्राट् मनुष्यता का द्रोही हो सकता है? सम्राट् न्याय का गला घोंट सकता है? सम्राट् किसी के सिर पर अपना दण्ड जबरदस्ती लाद सकता है? सम्राट् रक्त का प्यासा हो सकता है? भाई तुम जिसे सम्राट् कहते हो, उसे मनुष्यता के उपासक 'राक्षस' कहते हैं। फिर सम्राट की जय-घोषणा कैसी? तुम मुझे तोप से उड़ा दो—इसी में सम्राट् का मङ्गल है, इसी से पापों का घड़ा फूटेगा और उसे मुक्ति मिलेगी।'

× × ×

देव-मंडल के बीच बैठी हुई माता मनुष्यता की गोद में बैठ कर देश-भक्त ने और साथ ही त्रिसकोटि देवताओं ने देखा; पंचतत्व के एक पुतले को अत्याचार के उपासकों ने तोप से उड़ा दिया।

उस पुतले के एक-एक कण को देवताओं ने मणि की तरह लूट लिया। बहुत देर तक देवलोक 'देशभक्त की जय' से मुखरित रहा।

मक्रील

[यशपाल]

गर्मी का मौसम था। 'मक्रील' की सुहावनी पहाड़ी। आबोहवा में छुट्टी के दिन बिताने के लिए आयी सम्पूर्ण भद्र जनता खिंचकर मोटरों के अड्डे पर, जहाँ पंजाब से आनेवाली सड़क की गाड़ियाँ ठहरती हैं—एकत्र हो रही थी। सूर्य पश्चिम ओर देवदारों से छाई पहाड़ी की चोटी के पीछे सरक गया था। सूर्य का अवशिष्ट प्रकाश चोटी पर उगे देवदारों से ढकी आग की दीवार के समान जान पड़ता था।

ऊपर आकाश में मोर-पूँछ के आकार में दूर-दूर तक सिन्दूर फैल रहा था। उस गहरे अर्गवनी रंग के पर्दे पर ऊँची, काली चोटियाँ निश्चल, शान्त और गम्भीर खड़ी थीं। सन्ध्या के झीने अँधेरे में पहाड़ियों के पार्श्व के वनों से पक्षियों का कलरव तुमुल परिणाम में उठ रहा था। वायु में चीड़ की तीखी गन्ध भर रही थी। सभी ओर उत्साह, उमंग और चहल-पहल थी। भद्र महिलाओं और पुरुषों के समूह राष्ट्र के मुकुट को उज्ज्वल करने वाले कवि के सम्मान के लिए उतावले हो रहे थे।

यूरोप और अमरीका ने जिसकी प्रतिभा का लोहा मान लिया, जो देश के इतने अभिमान की सम्पत्ति है, वही कवि 'मक्रील' में कुछ दिन स्वास्थ्य सुधारने के लिए आ रहा है। मक्रील में सभी राष्ट्र-अभिमानी जनता पलकों के पाँवड़े डाल, उसकी अगवानी के लिए आतुर हो रही थी।

पहाड़ियों की छाती पर खिंची धूसर लकीर-सी सड़क पर दूर धूल का एक बादल-सा दिखलाई दिया। जनता की उत्सुक नज़रें और उँगलियाँ उस ओर उठ गईं। क्षण भर मे धूल के बादल को फाड़ती हुई काले रंग की एक गतिमान वस्तु दिखाई दी। वह एक मोटर थी। आनन्द की हिलोर से जनता का समूह लहरा उठा। देखते-ही-देखते मोटर आ पहुँची।

जनता की उन्मत्तता के कारण मोटर को दस क़दम पीछे ही रुक

जाना पड़ा—'देश के सिरताज की जय!', 'सरस्वती के वरद पुत्र की जय!', 'राष्ट्र के मुकुट-मणि की जय!' के नारों से पहाड़ियाँ गूँज उठीं।

मोटर फूलों से भर गई। बड़ी चहल-पहल के बाद जनता से घिरा हुआ, गजरों के बोझ से गर्दन झुकाए, शनैः-शनैः क़दम रखता हुआ मक़ील का अतिथि मोटर के अड्डे से चला।

उत्साह से बावली जनता विजयनाद करती हुई आगे-पीछे चल रही थी। जिन्होंने कवि का चेहरा देख पाया, वे भाग्यशाली विरले ही थे। 'धवलगिरि' होटल में दूसरी मंज़िल पर कवि को टिकाने की व्यवस्था की गई थी। वहाँ उसे पहुँचा, बहुत देर तक उसके आराम में व्याघात कर, जनता अपने स्थान को लौट आई।

क्वार की त्रयोदशी का चन्द्रमा पार्वत्य प्रदेश के निर्मल आकाश में ऊँचा उठ, अपनी शीतल आभा से आकाश और पृथ्वी को स्तम्भित किए था। उस दूध की बौछार में 'धवलगिरि' की हिमधवल दोमंजिली इमारत चाँदी की दीवार-सी चमक रही थी। होटल के आँगन की फुलवारी में खूब चाँदनी थी, परन्तु उत्तर-पूर्व के भाग में इमारत के बाजू की छाया पड़ने से अँधेरा था। बिजली के प्रकाश से चमकती खिड़कियों के शीशों और पर्दों के पीछे से आनेवाली मर्मर-ध्वनि तथा नौकरों के चलने-फिरने की आवाज़ के अतिरिक्त सब शान्त था।

उस समय इस अँधेरे बाजू के नीचे के कमरे में रहनेवाली एक युवती फुलवारी के अन्धकारमय भाग में एक सरो के पेड़ के समीप खड़ी दूसरी मंज़िल से पुष्प-तोरणों से सजी उन उज्ज्वल खिड़कियों की ओर दृष्टि लगाए थी, जिनमें सम्मानित कवि को ठहराया गया था।

वह युवती भी उस आवेगमय स्वागत में सम्मिलित थी। पुलकित हो उसने भी 'कवि' पर फूल फेंके थे। जयनाद भी किया था। उस घमासान भीड़ में समीप पहुँच, एक आँख कवि को देख लेने का अवसर उसे न मिला था। इसी साध को मन में लिये उस खिड़की की ओर टकटकी लगाये खड़ी थी। काँच पर कवि के शरीर की छाया उसे जब-तब दिखाई पड़ जाती।

स्फूर्तिप्रद भोजन के पश्चात् कवि ने बरामदे में आ, काले पहाड़ों के

ऊपर चन्द्रमा के मोहक प्रकाश को देखा। सामने सँकरी-धुँधली घाटी में बिजली की लपक की तरह फैली हुई मक्रील की धारा की ओर उसकी नज़र गई। नदी के प्रवाह की घरघराहट को सुन, वह सिहर उठा। कितने ही क्षण मुँह उठाए वह मुग्ध-भाव से खड़ा रहा। मक्रील नदी के उद्दाम प्रवाह को उस उज्ज्वल चाँदनी में देखने की इच्छा से कवि की आत्मा व्याकुल हो उठी। आवेश और उन्मेष का वह पुतला सौन्दर्य के इस आह्वान की उपेक्षा न कर सका।

सरो वृक्ष के समीप खड़ी युवती पुलकित भाव से देश-कीर्ति के उस उज्ज्वल नक्षत्र को प्यासी आँखों से देख रही थी। चाँद के धुँधले प्रकाश में इतनी दूर से उसने जो भी देख पाया, उसी से सन्तोष की साँस ले, उसने श्रद्धा से सिर नवा दिया। इसे ही अपना सौभाग्य समझ वह चलने को थी कि लम्बा ओवरकोट पहने, छड़ी हाथ में लिये दाईं ओर के ज़ीने से कवि नीचे आता दिखाई पड़ा। पल भर में कवि फुलवारी में आ पहुँचा।

फुलवारी में पहुँचने पर कवि को स्मरण हुआ, ख्यातनामा मक्रील नदी का मार्ग तो वह जानता ही नहीं। इस अज्ञान की अनुभूति से कवि ने दायें-बायें सहायता की आशा से देखा। समीप खड़ी एक युवती को देख, नम्रता से टोपी छूते हुए उसने पूछा, "आप भी इसी होटल में ठहरी हैं ?"

सम्मान से सिर झुकाकर युवती ने उत्तर दिया—"जी हाँ !"

झिझकते हुए कवि ने पूछा—"मक्रील नदी समीप ही किस ओर है, यह शायद आप जानती होंगी !"

उत्साह से क़दम बढ़ाते हुए युवती बोली—"जी हाँ, यही सौ कदम पर पुल है।" और मार्ग दिखाने के लिए वह प्रस्तुत हो गई।

युवती के खुले मुख पर चन्द्रमा का प्रकाश पड़ रहा था। पतली भँवों के नीचे बड़ी-बड़ी आँखों में मक्रील की उज्ज्वलता झलक रही थी।

कवि ने संकोच से कहा—"न, न, आपको व्यर्थ कष्ट होगा।"

गौरव से युवती बोली—"कुछ भी नहीं—यह तो है, सामने !"

....उजली चाँदनी रात में....संगमर्मर की सुघड़, सुन्दर, सजीव मूर्ति-सी युवती....साहसमयी विश्वासमयी मार्ग दिखाने चली....सुन्दरता

के याचक कवि को। कवि की कविता-वीणा के सूक्ष्म तार स्पन्दित हो उठे ....सुन्दरता स्वयं अपना परिचय देने चली है...सृष्टि सौन्दर्य के सरोवर की लहर उसे दूसरी लहर से मिलाने ले जा रही है—कवि ने सोचा।

सौ क़दम पर मक्रील का पुल था। दो पहाड़ियों के तंग दर्रे में से उद्दाम वेग और घनघोर शब्द से बहते हुए जल के ऊपर तारों के रस्सों में झूलता हल्का-सा पुल लटक रहा था। वे दोनों पुल के ऊपर जा खड़े हुए। नीचे तीव्र वेग से लाखों-करोड़ों पिघले हुए चाँद बहते चले जा रहे थे, पार्श्व की चट्टानों से टकराकर वे फेनिल हो उठते। फेनराशि से दृष्टि न हटा, कवि ने कहा—"सौन्दर्य उन्मत्त हो उठा है।" युवती को जान पड़ा, मानो प्रकृति मुखरित हो उठी है।

कुछ क्षण पश्चात् कवि बोला—"आवेग में ही सौन्दर्य का चरम विकास है। आवेग निकल जाने पर केवल कीचड़ रह जाता है।"

युवती तन्मयता से उन शब्दों को पी रही थी। कवि ने कहा—"अपने जन्म-स्थान पर मक्रील न इतनी वेगवती होगी, न इतनी उद्दाम। शिशु की लटपट चाल से वह चलती होगी, समुद्र में पहुँच वह प्रौढ़ता की शिथिल गम्भीरता धारण कर लेगी।

"अरी मक्रील! तेरा समय यही है। फूल न खिल जाने से पहले इतना सुन्दर होता है और न तब जब उसकी पँखुड़ियाँ लटक जायें। उसका असली समय वही है, जब वह स्फुटोन्मुख हो। मधुमाखी उसी समय उस पर निछावर होने के लिए मतवाली हो उठती है।" एक दीर्घ निःश्वास छोड़, आँखें झुका, कवि चुप हो गया।

मिनट पर मिनट गुज़रने लगे। सर्द पहाड़ी हवा के झोंके से कवि के वृद्ध शरीर को समय का ध्यान आया। उसने देखा, मक्रील की फेनिल श्वेतता युवती की सुघड़ता पर विराज रही है। एक क्षण के लिए कवि 'घोर शब्दमयी प्रवाहमयी' युवती को भूल, मूक युवती का सौन्दर्य निहारने लगा। हवा के दूसरे झोंके से सिहरकर वह बोला "समय अधिक हो गया है, चलना चाहिए।"

लौटते समय मार्ग में कवि ने कहा—"आज त्रयोदशी के दिन यह

शोभा है । कल और भी अधिक प्रकाश होगा । यदि असुविधा न हो, तो क्या कल भी मार्ग दिखाने आओगी ?" और स्वयं ही संकोच के चाबुक की चोट खाकर वह हँस पड़ा ।

युवती ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—"अवश्य ।"

सर्द हवा से कवि का शरीर ठिठुर गया था । कमरे की सुखद उष्णता से उसकी जान में जान आयी, भारी कपड़े उतारने के लिए वह परिधान की मेज़ के सामने गया । सिर से टोपी उतार उसने ज्यों ही नौकर के हाथ में दी, बिजली की तेज़ रोशनी के सामने आईने में दिखाई पड़ा, मानों उसके सिर के बालों पर राज ने चूने से भरी कूची का एक पोत दे दिया हो और धूप में सुखाए फल के समान झुर्रियों से भरा चेहरा !

नौकर को हाथ के संकेत से चले जाने को कह, वह दोनों हाथों से मुँह ढक कुर्सी पर गिर-सा पड़ा । मुँदी हुई पलकों में से उसे दिखाई दिया —चाँदनी में संगमर्मर की उज्ज्वल मूर्ति का सुघड़ चेहरा, जिस पर यौवन की पूर्णता छा रही थी, मक़ील का उन्माद भरा प्रवाह ! कवि की आत्मा चीख़ उठी—यौवन ! यौवन !!

ग्लानि की राख के नीचे बुझती चिनगारियों को उमंग के पंखे से सजग कर, चतुर्दशी की चाँदनी में मक़ील का नृत्य देखने के लिए कवि तत्पर हुआ । घोषमयी मक़ील को कवि के यौवन से कुछ मतलब न था, और 'मूक मक़ील' ने पूजा के धूप-दीप के धूम्रावरण में कवि के नख-शिख को देखा ही न था । इसलिए वह दिन के समय संसार की दृष्टि से बच-कर अपने कमरे में ही पड़ा रहा । चाँदनी खूब गहरी हो जाने पर मक़ील के पुल पर जाने के लिए वह शंकित हृदय से फुलवारी में आया । युवती प्रतीक्षा में खड़ी थी ।

कवि ने धड़कते हुए हृदय से उसकी ओर देखा—आज शाल के बदले वह शुतरी रंग का ओवरकोट पहने थी, परन्तु उस गौर, सुघड़ नख-शिख को पहचानने में भूल हो सकती थी !

कवि ने गद्‌गद् स्वर से कहा—"ओहो ! आपने अपनी बात रख ली ।

परन्तु इस सर्दी में कुसमय ! शायद उसके न रखने में ही अधिक बुद्धिमानी होती । व्यर्थ कष्ट क्यों कीजिएगा ?....आप विश्राम कीजिए ।"

युवती ने सिर झुका उत्तर दिया—"मेरा अहोभाग्य है, आपका सत्संग पा रही हूँ ।"

कंटकित स्वर से कवि बोला—"सो कुछ नहीं, सो कुछ नहीं ।"

पुल के समीप पहुँच कवि ने कहा—"आपकी कृपा है, आप मेरा साथ दे रही हैं ।....संसार में साथी बड़ी चीज़ है ।" मक्रील की ओर संकेत कर, "यह देखिए, इसका कोई साथी नहीं, इसलिए हाहाकार करती साथी की खोज में दौड़ती चली जा रही है ।"

स्वयं अपने कथन की तीव्रता के अनुभव से संकुचित हो हँसने का असफल प्रयत्न कर, अप्रतिभ हो, वह प्रवाह की ओर दृष्टि गड़ाए खड़ा रहा । आँखें बिना ऊपर उठाए ही उसने धीरे-धीरे कहा—"पृथ्वी की परिक्रमा कर आया हूँ....कल्पना में सुख की सृष्टि कर जब मैं गाता हूँ, संसार पुलकित हो उठता है । काल्पनिक वेदना के मेरे आर्तनाद को सुन संसार रोने लगता है । परन्तु मेरे वैयक्तिक सुख-दुःख से संसार को कोई संबंध नहीं । मैं अकेला हूँ । मेरे सुख को बटानेवाला कहीं कोई नहीं, इसलिए वह विकास न पा, तीव्र दाह बन जाता है ! मेरे दुःख का दुर्दम वेग असह्य हो अब उछल पड़ता है, तब भी संसार उसे विनोद का ही साधन समझ बैठता है । मैं पिंजरे में बंद बुलबुल हूँ । मेरा चहकना संसार सुनना चाहता है । मैं सुख से पुलकित हो गाता हूँ, या दुःख से रोता हूँ, इसकी चिंता किसी को नहीं....

"काश ! जीवन में मेरे सुख-दुःख का कोई एक अवलम्ब होता । मेरा कोई साथी होता ! मैं अपने सुख-दुःख का एक भाग उसे दे, उसकी अनुभूति का भाग ग्रहण कर सकता । मैं अपने इस निस्सार यश को दूर फेंक संसार का जीव बन जाता ।"

कवि चुप हो गया । मिनट पर मिनट बीतने लगे । ठंडी हवा से जब कवि का बूढ़ा शरीर सिहरने लगा, दीर्घ निःश्वास ले उसने कहा—"अच्छा, चलें ।"

द्रुत वेग से चली जाती जलराशि की ओर दृष्टि किए युवती कम्पित स्वर में बोली—"मुझे अपना साथी बना लीजिए।"

झील के गम्भीर गर्जन में विडम्बना की हँसी का स्वर मिलाते हुए कवि बोला—"तुम्हें?" और चुप रह गया।

शरीर काँप उठने के कारण पुल के रेलिंग का आश्रय ले, युवती ने लज्जा-विजड़ित स्वर में कहा—"मैं यद्यपि तुच्छ हूँ...."

"न-न-न, यह बात नहीं"—कवि सहसा रुककर बोला, "उलटीबात ....हाँ, अब चलें।"

फुलवारी में पहुँच कवि ने कहा, "कल...." परन्तु बात पूरी कहे बिना ही वह चला गया।

× × ×

अपने कमरे में पहुँचकर सामने आईने की ओर दृष्टि न करने का वह जितना ही यत्न करने लगा, उतना ही स्पष्ट अपने मुख का प्रतिबिम्ब उसके सम्मुख आ उपस्थित होता। बड़ी बेचैनी में कवि का दिन बीता। उसने सुबह ही एक तौलिया आईने पर डाल दिया और दिन भर कहीं बाहर न निकला।

दिन भर सोच और जाने क्या निश्चय कर सन्ध्या समय कवि पुनः तैयार हो फुलवारी में गया। शुतरी रंग के कोट में संगमर्मर की वह सुघड़ मूर्ति सामने खड़ी थी। कवि के हृदय की तमाम उलझन क्षण भर में लोप हो गई। कवि ने हँसकर कहा—"इस सर्दी में....? देश-काल-पात्र देखकर ही वचन का भी पालन किया जाता है।" पूर्णिमा के प्रकाश में कवि ने देखा, उसकी बात के उत्तर में युवती के मुख पर सन्तोष और आत्म-विश्वास की मुस्कराहट फिर गई।' पुल पर पहुँच हँसते हुए कवि बोला, "तो साथ देने की बात सचमुच ठीक थी?"

युवती ने उत्तर दिया—"उसमें परिहास की तो कोई बात नहीं।"

कवि ने युवती की ओर देख, साहस कर पूछा—"तो जरूर साथ दोगी।"

"हाँ।"—युवती ने हामी भरी, बिना सिर उठाए ही।

"सब अवस्था में, सदा?"

सिर झुकाकर युवती ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"हाँ।"

कवि अविश्वास से हँस पड़ा—"तो आओ, उसने कहा—यहीं साथ दो मक़ील के गर्भ में ?"

"हाँ, यहीं सही।" युवती ने निर्भीक भाव से नेत्र उठाकर कहा।

हँसी रोककर कवि ने कहा—"अच्छा, तो तैयार हो जाओ—एक, दो, तीन।" हँसकर कवि अपना हाथ युवती के कन्धे पर रखना चाहता था। उसने देखा, पुल के रेलिंग के ऊपर से युवती का शरीर नीचे मक़ील के उद्दाम प्रवाह की ओर चला गया।

भय से उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। हाथ फैलाकर उसे पकड़ने के विफल प्रयत्न में बड़ी कठिनता से वह अपने आपको सम्हाल सका।

मक़ील के घोर गर्जन में एकदफ़े सुनाई दिया—'छप' और फिर केवल नदी का गम्भीर गर्जन।

कवि को ऐसा जान पड़ा, मानो मक़ील की लहरें निरंतर उसे 'आओ! 'आओ!' कहकर बुला रही हैं। वह सचेत ज्ञान-शून्य पुल का रेलिंग पकड़े खड़ा रहा। जब पीठ पीछे से चलकर चन्द्रमा का प्रकाश उसके मुँह पर पड़ने लगा, उन्मत्त की भाँति लड़खड़ाता वह अपने कमरे की ओर चला।

कितनी देर तक वह निश्चल आईने के सामने ख़ड़ा रहा। फिर हाथ की लकड़ी को दोनों हाथों से थाम उसने पड़ापड़ आईने पर कितनी ही चोट लगाई और तब साँस चढ़ आने के कारण वह हाँफता हुआ आईने के सामने की ही कुर्सी पर धम से गिर पड़ा।

× × ×

प्रातः हजामत के लिए गरम पानी लानेवाले नौकर ने जब देखा—कवि आईने के सामने कुर्सी पर निश्चल बैठा है,' परन्तु आईना टुकड़े-टुकड़े हो गया और उसके बीच का भाग गायब है। चौखट में फँसे आईने के लम्बे-लम्बे भाले के से टुकड़े मानो दाँत निकालकर कवि के निर्जीव शरीर को डरा रहे हैं।

कवि का मुख कागज की भाँति पीला और शरीर काठ की भाँति जड़ था। उसकी आँखें अब भी खुली थीं, उनमें से जीवन नहीं, मृत्यु झाँक रही थी। बाद में मालूम हुआ, रात के पिछले पहर कवि के कमरे से अनेक बार—'आता हूँ, आता हूँ' की पुकार सुनाई दी थी।

ज़ंग

[सन्तोष 'सन्तोष']

तरह-तरह की आवाज़ें। अजीब-सा कोलाहल था। अपनी दूकान के अधखुले दरवाजे से आती हुई धुन-धुन-धर्रा, धुन-धुन-धर्रा और फिर ठा-आ....ठक। पास में बैठा हुआ लोहार लोहे के टुकड़े को—शायद खुरिएँ थीं.... हालाँकि ठा....आ....आ की कोई आवाज न थी। केवल ठक ही थी। न जाने ठा-आ-आ कैसे जुड़ जाता था। फिर मोटर के नीचे लेटे हुए दो व्यक्तियों की कचड़-कचड़ फुसड़-फुसड़। सामने से एक टाँगा निकल गया। टाँगेवाले ने चाबुक पहिए में फँसा दिया। फिर तड़-तड़....ड़....ड़....ड़....की लगातार आनेवाली ध्वनि....धुन-धुन धर्रा, धुन-धुन धर्रा....ठा—आ—आ—ठक।

मैंने कार के सभी शीशे चढ़ा दिये। आवाज़ें दब-सी गईं। मेमने का गला घुटा जा रहा था। सामने से जा रहा था मेमना, गले में रस्सी थी। आगे-आगे चलता हुआ व्यक्ति खींचता जा रहा था—गले में रस्सी घुट रही थी।

दबी-दबी आवाज़ें कानों में सरकने लगीं। मैंने रेडियो 'आन' किया। इंग्लिश-म्यूजिक चल रहा था। आँखें बन्दकर मैंने टाँगें पसार लीं।

किसी ने खिड़की पर हाथ मारा। मैंने देखा, छोटा लड़का था। मुँह खिड़की के साथ लगा था। नाक चपटी दिख रही थी—मेंढक की तरह। चेहरे पर कई धब्बे थे—शायद खिड़की के शीशे पर थे धब्बे।

'क्या है ?'

'वह नहीं खुलता।'

'क्या नहीं खुलता ?'

'वह नट....।'

'तो मैं क्या करूँ, खोलो।'

'नहीं खुलता....वह कहता है।'

'कौन कहता है ?' खीझकर मैंने शीशा नीचे घुमाना शुरू किया।

शायद उसकी नाक बह रही थी। शीशे पर एक मोटी सफेद रेखा-सी खिंचने लगी। उसने नाक पीछे को हटा ली।

नीचे से बड़ा लड़का भी निकल आया।

'साहब, वह न....न....नहीं खुल सकता।'

झुककर उसने मुँह खिड़की से अन्दर किया।

धुन-धुन धर्रा, धुन-धुन-धुर्रा।

न—न—नट टेढ़ा हो चुका है। च-च-च चूड़ियाँ भी मर चुकी हैं। उसके खुले मुँह से बू आ रही थी। बड़े-बड़े ऊबड़-खाबड़ दाँतों पर पीली और कत्थई परत जमी हुई थी और केंकड़े जैसे लग रहे थे उसके दाँत—उलटे केंकड़े की तरह।

'ज-ज-ज जंग लगी हुई है।'

मैंने अपना सिर परे को सरका लिया।

'जंग लगी हुई है।' मैं बुदबुदाया।

धुन-धुन धुर्रा—धुन-धुन धर्रा....

ठा....आ—ठक की आवाज़ नहीं थी।

बुड्ढा आ गया। मैं फिर से रेडियो सुनने लगा।

किस मी हार्ड, किस मी स्ट्राँग, किस मी....

'अबे, खड़े-खड़े क्या देखते हो। काम निपटा लिया ?'

'नि....नि-नि निपटे तो तब....ब-ब....बातों से थोड़ा निपटता है काम ....ब-ब-ब ब्रेक का नट ही नहीं खुलता।'

'अबे, ब-ब-ब के बच्चे, कुछ काम भी करता है या खाली बातें ही बनाता है।'

किस मी हाई, किस मी लो....

धुन-धुन धर्रा, धुन-धुन

किस मी....

'ब....ब....बातें तो तू बनाता है....ख-ख-खोलो तो देखूँ . ह ...ह हाथ फिसल रहा है।'

किस मी राइट....

'ला, इधर ला चाबी।'

किस मी रॉंग....

'बाबूजी, कोई कपड़ा हो तो दीजिए।'

मैंने रेडियो धीमा किया। इधर-उधर देखा, कोई कपड़ा न था।

'कोई रूमाल ही हो....हाथ फिसल रहा है सरकार।'

'रूमाल ?' रूमाल भला मैं कैसे देता ?

धुन-धुन धर्रा, धुन-धुन धर्रा....

'ही-ही....ही....रूमाल।'' मैं बेमतलब दाँत निकालने लगा। वह समझ गया।

'अबे जा, खड़ा-खड़ा क्या देखता है।' बूढ़ा छोटे लड़के को घूरने लगा। 'बशीर की दूकान से ला भागकर कपड़ा।'

लड़का बूढ़े को देखे जा रहा था गर्दन उठाकर।

'बशीर की दूकान तो बन्द है।'

'क....क....कहीं से भी ले आ....'

धुन-धुन धर्रा, धुन-धुन....'

'बि....बि बि बिटर बिटर क्या देखता है ?'

बड़े लड़के ने धक्का दिया।

'अबे, मारता क्यों है ? जा तो रहा हूँ।'

'म....म....म....मार कहाँ रहा हूँ।'

धुन-धुन धर्रा धुन-धुन धर्रा....ठा-आ ठक....

लोहार फिर से लोहा पीटने लगा।

मैंने शीशा चढ़ा दिया। रेडियो पर 'नेवर आन संडे' का गाना धीमे स्वर में बज रहा था।

बट नेवर आन सण्डे, सण्डे दैट इज दी डे आफ रैस्ट।

कम एनी डे एण्ड बी माई गैस्ट, बट आई विल स्टे

अवे दि डे आफ रैस्ट....

मण्डे, ट्यूजडे, वेन्सडे, थर्सडे—फ्राईडे....फ्राईडे....फ्राईड....फ्राईडे।